सो सम्यग्दर्शन है, बहुरि जिस जिस प्रकार जीवादिक पदार्थ तिष्ठे हैं तिसतिस प्रकार कर तिनका जानना सो सम्यग्ज्ञान है, बहुरि जिस क्रियातें संसार के कारण कर्म आवैं तिस क्रिया का त्याग सो सम्यग्चारित्र है, इन तीनों की एकता तें समस्त कर्मका अभावरूप मोक्ष होयहै.

॥ अब सम्यग्दर्शन का लक्षण कहैं हैं ॥

तत्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् २ ॥

अर्थ—जो पदार्थ जैसे तिष्ठे है तैसा तिसका होना सो तत्व है अरु तत्वकर निश्चै करिये सो तत्वार्थ है, तत्वार्थ जे जीवादिक पदार्थ तिनका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है।

॥ सम्यग्दर्शन कैसे उपजै है सो कहे हैं ॥

तन्निसर्गादधिगमाद्वा ३ ॥

अर्थ—जो सम्यग्दर्शन बाह्य उपदेश विना प्रकट होय सो निसर्गसम्यक्त है, अरु जो परके उपदेशतें जीवादिक पदार्थोंका श्रद्धान होय सो अधिगम सम्यक्त है ॥

अब तत्वों के नाम कहै हैं ॥

जीवाजीवाश्रवबन्ध सम्वर निर्ज्जरामोक्षास्तत्वम् ॥ ४ ॥

१

अर्थ ॥ चेतना लक्षण जीव है ॥ चेतना रहित होय सो अजीव है ॥ शुभ अरु अशुभ कर्म आवने के द्वार सो आश्रव हैं ॥ आतमाके प्रदेश अरु कर्मके प्रदेशनि का मिलना सो बंध है,

आवते कर्मको रोकना सो संवर है, एक देशतें कर्मकाक्षय होना सो निर्जरा है समस्त कर्मका नाश होना सो मोक्ष है ॥ए सप्ततत्त्व हैं ॥

अब सम्यग्दर्शनादिक वा जीव अजीवादिक पदार्थनिका यथावत् व्यवहार के अर्थ चारि निक्षेपक कहैं हैं ॥

नामस्थापनाद्रव्य भावतस्तन्न्यासः ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ जिस वस्तुका जैसा नाम है तैसा गुण तो नहीं होय अरु व्यवहार की प्रवृत्तिके अर्थनाम संज्ञा कहिये सो नाम निक्षेप है ॥ जैसे किसी मनुष्य का नाम इंद्र राजा कहैं वहुरि धातु पाषाण अरुकाष्ट मृत्तिकादिकनि में सो यो है ऐसा स्थापन करना सो स्थापना है जैसे सतरंज के ख्याल में काष्ठके रोणानिकूं हस्ती घोटक कहैं हैं ॥ और आगामी कालमें जिस रूप होयगा ताकूं तिस रूप कहना सो द्रव्य निक्षेप है ॥ जैसे राजा के पुत्रको राजा कहना ॥ बहुरि वर्त्तमान जैसी पर्याय सहित होय ताकूं तैसा कहना सो भाव निक्षेप है॥ जैसे राज्य करता होय ताकूं राजा कहना ॥ ऐसे चार निक्षेपानिकर जीवादिकनि को स्थापन करिये है ॥ नाम निक्षेप मैं तो नाम मात्रही व्यवहार के अर्थ कहना है और प्रयोजन नाहीं। जैसे किसीको ऋषभ कह्या तहाँ नाम कह देने मात्रही प्रयोजन है॥ अरु जहां ऋषभ की स्थापना करी ॥ तहां तदाकार वा अतदाकार में साक्षात् ऋषभही मानकर आदर स्तवन दर्शन पूजन करना योग्य है ॥ ऐसे चार निक्षेपनि तैं पदार्थनिका व्यवहार प्रवर्तें है सो यथावत जानना ।

ऐसे नामादि जो निक्षेपनिकर अगीकार किये पदार्थनिका स्वरूप का ज्ञान काहेतैं होयहैं तातैं सूत्र कहैं हैं ॥

प्रमाणनयरधिगमः ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ प्रमाण और नयनिकर जीवादिक तत्वनिका जानपना होय है॥

बहुरि सम्यग् दर्शनादिक तथाजीवादिकनिके जानने का उपाय कहे है ॥

निर्हेंशस्वामित्व साधनाधिकरणस्थिति विधानतः ॥ ७ ॥

अर्थ---निर्देश कहिये स्वरूप का कहनो ॥ स्वामित्व कहिये अधिपतिपनो ॥ साधन कहिये उत्पत्तिका निमित्त ॥ और अधिकरण कहिये आधार ॥ स्थिति कहिये कालका प्रमाण ॥ विधान कहिये प्रकार ॥ इन छः प्रकार करकेहू सम्यग्दर्शनादिक तथा जीवादिक जानिये हैं ॥ इसका उदाहरण ॥ सम्यग्दर्शन क्या है ? ऐसा प्रश्न होतें उत्तर कहैं हैं तत्वार्थनिका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है ये तो निर्देश है ॥ और सम्यग्दर्शन कौनके होय है ऐसे स्वामित्वको पूछे सो कहै हैं ॥ सामान्य करिकैं तो जीवके होय है ॥ विशेष करिके कहैं हैं ॥ गतिके अनुवादकर नर्क गति विषैं कोई जीवकै सम्यक्त होय तो समस्त नर्क विषैं नारकीनकै पर्याप्त अवस्था विषैं उपशम वा क्षयोपशम सम्यक्त होय हैं ॥ अरु प्रथम नर्क विषैं पर्याप्त अपर्याप्त अवस्था विषैं क्षायिक क्षायोपशमिक होय है ॥ द्वितीयादि नरकमें अपर्याप्त अवस्था विषैं सम्यक्त नहीं होय है॥ और तिर्यंच विषैं सम्यक्त होय तो उपशम सम्यक्त तो पर्याप्त तिर्यंचहीके होयहै अपर्याप्तकै नहीं होय है ॥ अरु क्षायिक क्षयोपशामिक पर्याप्त अपर्याप्त दोनों अवस्थामें होय परंतु अपर्याप्त

अवस्थामें भोग भूमिके तिर्यंचहीकै होयहै ॥ कर्मभूमिके तिर्यंचकै पर्याप्त अवस्थाहीमें उपशम
क्षयोपशम होय क्षायक नहीं होय ॥ अर क्षायक सम्यक्त तिर्यंचनिकै होयही नहीं अर उपशम
क्षयोपशम सम्यक्त पर्याप्त अवस्था में तिर्यंचनि के होय अपर्याप्त अवस्था में नहीं होय ॥
बहुरि मनुष्य गति विषैं क्षायक क्षयोपशमिक दोय सम्यक्त तो पर्याप्त अपर्याप्त दोऊ अवस्था
विषैं होजाय है अर उपशम सम्यक्त पर्याप्त अवस्थाही में होय अपर्याप्त अवस्था में नहीं होय ।
मनुष्यनिकै (स्त्रीकै) पर्याप्त अवस्थाही में सम्यक्त्व होय, अपर्याप्त अवस्था में नहीं होय ॥
क्षायकसम्यक्त द्रव्य स्त्रीकै नहीं होय भाव स्त्रीकै होय॥ देवगतिमें सम्यक्त होय तो कल्पवासीन
में पर्याप्त अपर्याप्त दोऊ अवस्था विषैं तीनों प्रकार का सम्यक्त होय है ॥ अर भवनवासी
व्यंतर ज्योतिष्क इन तीन प्रकार के देव अर इनकी देवांगना अर कल्पवासी की समस्त देवांग-
ना इनकै क्षायक सम्यक्त तो होयही नहीं ॥ अर उपशम क्षयोपसम दोय सम्यक्त
होंय परन्तु पर्याप्तही कै होय अपर्याप्तकै नहीं होंय अर इन्द्री के अनुवाद करि संज्ञी पंचेंद्री
के तीनों सम्यक्त होंय असंज्ञी पर्याप्तकै नहीं होंय ॥ अर कायके अनुवाद करि त्रसकायकै
तीनों सम्यक्त होंय थावरकै नहीं होंय ॥ अर योगके अनुवाद करि तीनों योगिनि में तीनों
सम्यक्त होय हैं अर योग रहित अयोगी भगवान् कै क्षायक सम्यक्तही है ॥ वेद के अनुवाद

करि तीनों वेदन में तीनों सम्यक्त होय अर वेद रहितनिकै उपशम वा क्षायक सम्यक्त होय है ॥ कषायके अनुवाद करि च्यारों कषायनिमें तीनों सम्यक्त होय हैं अर कषाय रहितन कै उपशम क्षायक दोयही सम्यक्त होय हैं ॥ ज्ञानके अनुवाद करि मति श्रुति अवधि मनः पर्यय इन च्यार ज्ञान में तीनो सम्यक्त हैं केवल ज्ञान विषैं क्षायक सम्यक्तही है ॥ और संयमके अनुवाद करि सामाइक छेदोपस्थापना ये दोय संयम विषैं तीनों सम्यक्त होंय अर परिहार विशुद्धि संयम विषैं उपशमसम्यक्त बिना दोय सम्यक्त होंय हैं ॥ सूक्ष्म सांपराय संयम यथाख्यात संयम इन दोय संयम विषैं उपशम सम्यक्त अर क्षायक सम्यक्त होय है ॥ संयतासंयत विषै तीनों सम्यक्त हैं अर असंयत विषैहू तीनों सम्यक्त हैं ॥ दर्शन के अनुवाद करि चक्षुदर्शन अचक्षुदर्शन अवध दर्शन इन तीनों दर्शन विषैं तीनों सम्यक्त हैं अर केवल दर्शन विषै एक क्षायक सम्यक्त है ॥ लेश्या के अनुवाद करि छह लेश्यानिमै तीनों सम्यक्त हैं अर लेश्या रहित में क्षायक सम्यक्त है ॥ भव्यके अनुवाद करि भव्य कै तीनों सम्यक्त हैं अर अभव्यकै सम्यक्त नहीं हैं ॥ सम्यक्तके अनुवाद करि जहां जैसा सम्यग्दर्शन है तहां तैसाही जानना ॥ संज्ञीके अनुवाद करि संगी कै तीनों सम्यक्त हैं अर असंगी कै सम्यक्त नहीं है अर संज्ञी असंगी दोऊ पनारहित कै क्षायकसम्यक्त ही है ॥

आहारक के अनुवाद करि आहारकानिके तीनों सम्यक्त हैं अर अनाहारकन कै कहिये छद्मस्थन के तीनों सम्यक्त हैं समुद्घातगत अनाहारक के क्षायक सम्यकही है॥ ऐसे सम्यक्तका स्वामित्व कहा ॥ अब सम्यक्तका साधन जो कारण सो कहैं हैं ॥ सो साधन दोय प्रकार हैं एक अभ्यन्तर एकबाह्य ॥ अभ्यन्तर साधन तो दर्शन मोहका उपशम क्षय तथा क्षयोपशम ये तीन हैं अर बाह्य कारण तीसरे नर्कतांई नारकीनिकै कितनेक कै जातिस्मरणतें सम्यक्त होय अर कितनेक नारकीनकै धर्म श्रवणतें सम्यक्त होय अर कितनेककै वेदनाके भोगने तें सम्यग्दर्शन उपजे है। अर चतुर्थ पृथ्वीकूं आदि लेय सप्तम पृथ्वी तांई के नारकीन मैं केइकनकै जाति स्मरणतें केईकनिकै वेदनाका अनुभव करि सम्यक्त होय है। तीसरी पृथ्वी तांई ही धर्म श्रवण कारण है नीचे नांही है। तिर्यंचनिमें कइनिकै जातिस्मरण केइनकै धर्म श्रवण केईनकै जिन बिंबदर्शन, सम्यक्त उपजने के कारण हैं ॥ अर मनुष्यनिकै एही तीन कारण हैं ॥ देवानमें कितने देवनिके जाति स्मरण कितेकनिकें धर्म श्रवण कितनेकनिके जिनेन्द्र के कल्याणकनि की महिमा के देखने करि कितनेके महर्द्धिक देवनिकी ऋद्धिके देखने करि सम्यकदर्शन उत्पन्न होय है। बारवां स्वर्ग पर्यंत यह कारण कहे अरु आनत, प्राणत, आरण, अच्युत के देवनिके देव ऋद्धि दर्शन बिना तीनही कारण हैं। अरु नवग्रीवकन वासीननि के कितनेकनि के

ज़ाति स्मरण कितनेके धर्म श्रवण दोयही कारण हैं अरु अनुदिग अनुत्तर के निवासीनि के या कल्पना नहीं है उनके पूर्व जन्ममें सम्यक्त ग्रहण किया होय तिसही का उत्पाद है ऐसे साधन कहा। अधिकर जो आधार सो दोय प्रकार है, अभ्यंतर आधार अर बाह्य आधार सम्यक्त का अभ्यंतर आधार तो सम्यक्त के उपजने योग्य आत्माही है अरु बाह्य आधार एक राजू चौड़ी लम्बी चौदह राजू ऊंची ऐसी त्रणाली माही सम्यक दृष्टी है बाह्य नहीं। ऐसे अधिकरण कहा ॥ अब स्थिति कहैं हैं॥ अपशमिक सम्यक्त की एक जीव के उत्कृष्ट तथा जघन्य हू अन्तर महूर्तकी है क्षायक सम्यक्तकी स्थिति संसारी जीवके जघन्य अन्तर महूर्त की है अन्तर महूर्त पीछे निर्वाण होजायही उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर अन्तर महूर्त सहित अष्ट वर्षहीन कोटि द्वय अधिक है अरु मुक्त जीवके क्षायक सम्यक्तकी स्थिति आदि सहित है अरु अन्त नही है ऐसी है अरु क्षायोपशमिक सम्यक्त की है स्थिति जघन्य अन्तर महूर्त की है अरु उत्कृष्ट छहासठ सागर की ऐसे स्थिति कही ॥ अब विधान कहे हैं सामान्य ते सम्यक्त एक प्रकार है निःसर्गज अधिगमज के भेदते दोय प्रकार है उपशमिक क्षायक क्षायोपशमिक भेदतें तीन प्रकार हैं ऐसे संख्येय भेद हैं ॥ अरु श्रद्धा न करने वाला अर श्रद्धा न करने योग्य पणा के भेदतें असंख्यात अनन्त भेद हैं ऐसे सम्यक् दर्शन निर्देशादिक छः प्रकार कर

वर्णन किया, तैसेही ज्ञान चार में तथा जीवाजीवादिक तत्वनि में परमागम के अनुसार कर युक्त करने योग्य है और हू जानने का उपाय कहे ॥

सत्संख्याक्षेत्र, स्पर्शनकालान्तर भावाल्पबहुत्वैश्च ॥ ८ ॥

सत् कहिये अस्तित्व, संख्या कहिये भेनिकी गणना, क्षेत्र कहिये वर्तमान काल में निवास, स्पार्शन कहिये त्रकाल गोचर निवाल, काल कहिये समय की मर्यादा, अंतर कहिये विरह काल, भाव कहिये क्षयोपशमादिक अल्प बहुत्व कहिये परस्पर की अपेक्षा कर हीन अधिकपणा इन अष्टनि करकेहू सम्यक् दर्शनादिकन कूं तथा जीवादिकनकूं जानना ॥ अब सम्यक् ज्ञानकूं कहें हैं ।

मति श्रुतावधिमनः पर्ययकेवलानिज्ञानम् ॥ ९ ॥

मति, श्रुत, अवधि, मनः पर्यय केवल यह पांच प्रकार ज्ञान के भेद हैं सो इन पांच प्रकार के ज्ञान कोही प्रमाण संज्ञा है ।

तत्प्रमाणे ॥ १० ॥

ते मत्यादिक ज्ञान हैं तेही प्रमाण हैं ।

आद्ये परोक्षम् ॥ ११ ॥

आदि के मति ज्ञान, श्रुत ज्ञान, यह दो परोक्ष प्रमाण हैं ।

प्रत्यक्ष मान्यत् ॥ १२ ॥

मति श्रुत बिना अन्यजे अवधि मनः पर्यय केवल यह तीन ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण हैं ॥

मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताभिनबोध इत्यनर्थान्तरम् ॥ १३ ॥

इन्द्रिय अरु मनसे अवग्रहादि रूपकर जानना सो मति है अरु जानने का कालांतर में याद करना सो स्मृति है पूर्व देखा था ताकूं बर्तमान काल में देखे ऐसा ज्ञान होय जो पूर्व देखा सो यह है ऐसे पूर्व कालमें अनुभया का अरु बर्तमान कालमें अनुभया का जोड़ रूप ज्ञानको प्रतिभिज्ञान कहिये है संज्ञा है बहुरि सर्व देशमें सर्व कालमें साध्य साधनके व्यभिचार नहीं होय ऐसा संबंध विशेषकूं व्याप्त कहिये वा तर्क कहिये सो चिन्ता है, बहुरि लिंगकूं जान लिंगी का जानना सो अनुमान है याकूं अभिनबोध कहिये यद्यपि मति, स्मृति संज्ञा, चिंता, अभिनबोध इनको शब्द के भेदतें अर्थ भेद है तथापि मतिज्ञानावर्ण के क्षयोपशमतें उपजे है तातें मति ज्ञानही है अन्य नहीं है ॥

तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् ॥ १४ ॥

सो मति ज्ञान इन्द्रिय अरु अनिन्द्रिय जो मन ताके निमित्ततें उपजे है ।

अवग्रहहावाय धारणाः ॥ १५ ॥

विषय अरु इन्द्रियनिका जोड़ होतेही जो सामान्य सत्ता मात्र का ग्रहण होय सो दर्शन है । यो शुद्ध है ऐसा विशेष ग्रहण होना सो अवग्र नाम मति ज्ञान है । बहुरि अवग्रह कर

ग्रहण किया जो शुक्ल रूप तिस विषय जो विशेष जाननेकी इच्छा जो यो शुक्ल दीखे हैं सो ध्वजा जानी जाय है ऐसा ज्ञान सो ईहा है वहुरिताका निर्णय होना जो या ध्वजाहो है ऐसा निश्चय होना सो आवाय है बहुरि जाका निश्चय भया ताको अन्य कालमें विस्मर्ण नहीं होना सो धारणा है ॥

वहुवहुविधक्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवाणां सेतराणाम् ॥ १६ ॥

पदार्थ अरु इन्द्रियनिके सम्बन्ध होतेही जो आदिमें पदार्थ को स्वरूप ग्रहण होय सो अवग्रह ज्ञान है सो बहुत वस्तु का अवग्रह होय है अरु अल्प बस्तुकाहू अवग्रह होय है बहुरि बहुत प्रकार के बस्तुनिका अवग्रह होय अरु एक प्रकार के वस्तुकाहू अवग्रह होय है शीघ्र का अवग्रह अरु चिरकाल कर अवग्रह होय है बहुरि समस्त निकली का अवग्रह होय है बहुरि बिना कहा का अभिप्राय करि अवग्रह होय अरु कहा हुवा काहू अवग्रह होय है बहुरि बस्तुका जैसा रूप होय तैसा निरंतर अवग्रह होय है अरु छिन मात्र में भिन्न भिन्न हू अवग्रह होय है ऐसे द्वादश प्रकार अवग्रह कहा तैसेही द्वादश प्रकार ईहा आवाय धारणा है ऐसे एक इन्द्रिय के द्वारा अड़तालीस अड़तालीस भेद हैं समस्त इन्द्रिय अरु मन इन छहों के दोय से अठासी भेद होय ह ।

अर्थस्य ॥ १७ ॥

यह दोयसे अठासी भेद रूप ज्ञानके भेद अर्थ कहिये इन्द्रियनके विषयमें आवैं ऐसे पदार्थके हैं॥

व्यञ्जनस्यावग्रहः ॥ १८ ॥

व्यञ्जन जो अप्रगट शब्दादिक तिनका अवग्रहही होय है ईहा आवाय धारणाः नहीं होय है ॥

न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् ॥ १९ ॥

व्यंजन जो अप्रगट ताका अवग्रह नेत्र और मनते नहीं होय है चार इन्द्रियन के ही होय है ॥

श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेक द्वादश भेदम् ॥ २० ॥

श्रुत ज्ञान होय है सो मति ज्ञान पूर्वक होय है श्रुति ज्ञानका कारण मति ज्ञान है अरु श्रुत ज्ञान के दोय तथा अनेक तथा द्वादश भेद हैं ॥

भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम् ॥ २१ ॥

देवनिके तथा नारकीनके अवध ज्ञान है ताकू भव कहिये देव वा नारकी पर्याय ही का कारण है जो देवकी और नारकी पर्याय धारेगा ताके अवध ज्ञानावर्ण का क्षयोपशम होय न्यमते अवध ज्ञान उपजेहीगा मिथ्या दृष्टीनिके विभंग असम्यग् दृष्टीनिके सम्यक अवधि होय है ॥

क्षयोपशमनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ॥ २२ ॥

शेष कहिये मनुष्य अरु संज्ञी तिर्यंच इनमें कोई के अवध ज्ञान होय है सो अवध ज्ञानावर्ण कर्मके क्षयोपशम ते होय हैं ताके छे भेद हैं अनुगामी (१) अननुगामी (२) वर्धमान (३) हीयमान (४) अवस्थित (५) अनुवस्थित (६)

ऋजुविपुलमतीमनः पर्ययः ॥ २३ ॥

अर्थ ॥ ऋजुमतिमनः पर्यय अर विपुल मति मनः पर्यय ऐसे दोय प्रकार का मनः पर्यय ज्ञान है ॥

विशुद्ध्य प्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ॥ २४ ॥

अर्थ ॥ ऋजुमति मनः पर्ययसे विपुलमति मनःपर्ययमें विशुद्धता अधिक है सो द्रव्य क्षेत्र काल भाव करि अधिक है। अर ऋजुमति मनः पर्ययज्ञान छूटै तो छूटही जाय है अर विपुलमतिमनः पर्ययज्ञान हुवा फेर छूटै नहीं केवल ज्ञानही उपजावै है।

विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्यो वधिमनः पर्ययोः ॥ २५ ॥

अर्थ ॥ अवधिज्ञान तैं मनःपर्ययज्ञानकी शुद्धता अधिक है । अर क्षेत्रअवधि ज्ञान का अधिक है ॥ अब स्वामित्व कहें हैं ॥ अवधि ज्ञानतो संयमीकैं होय है ॥ अर असंयमीकेहू होय है ॥ अर मनःपर्यय ज्ञान असंयमीकैं होय नहीं संयमीकेही होय है ॥

परन्तु सप्त ऋद्धिमें कोऊ ऋद्धि जाके उपजी होय ऐसे विशेष चारित्र युक्त संयमी (मुनि) ही कै मनः पर्ययज्ञान होय ॥ बहुरि अवधिज्ञानतें मनः पर्ययज्ञान का जानपना विशेष सूक्ष्म है ॥ मनका सूक्ष्म संबंध मनः पर्यय ज्ञान जाने है ॥ ऐसे अवधि अर मनः पर्यय में विशेष है।

मति श्रुतियोर्निबंधोद्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु ॥ २६ ॥

अर्थ ॥ मतिज्ञान अर श्रुति ज्ञान छहोंद्रव्यके पर्यायको एकोदेशी जानै है समस्त पर्याय को नहीं जाने है ॥ समस्तद्रव्य जे जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश काल इनके कितनेक पर्याय को मतिज्ञान श्रुतज्ञान परोक्षहू जाने है।

रूपिष्ववधेः ॥ २७ ॥

अर्थ ॥ अवधि ज्ञान के विषयका नियम रूपी द्रव्यजे एक पुद्गल तिसकी जाने है अरूपी द्रव्यको नहीं जाने है ॥

तदनन्तभागेमनः पर्ययस्य ॥ २८ ॥

अर्थ॥ अवधिज्ञानका विषय जो रूपी द्रव्य तिसके अनंत भागकीजे तिसमें एक भाग रूप पुद्गलको मनःपर्यय ज्ञान जाने है ताते मनःपर्यय ज्ञानका सूक्ष्म विषय है ॥

सर्व द्रव्य पर्यायेषु केवलस्य ॥ २९ ॥

अर्थ—जीवादिक समस्त द्रव्य अरु समस्त द्रव्यन का भूत भविष्यत वर्तमान त्रिकालवर्ती अनन्तपर्यायनि विषय जानने का केवल ज्ञान का नियम है ॥

एकादीनिभाज्यानियुगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः

अर्थ--एक आत्मविषय युगपत् एक ज्ञान को आदिले चार पर्यंत ज्ञानहोय हैं ॥ एक होय तदि केवल ज्ञान होय ॥ दोय होय तहां मतिज्ञान अर श्रुति ज्ञान होय हैं ॥ तीन ज्ञान होय तहां मति, श्रुति, अवधि होय वा मति श्रुति मनः पर्यय, होय ॥ चार ज्ञान होय तहां मति, श्रुत अवधि मनः पर्यय, होय है ॥

मतिश्रुतावधयोविपर्ययश्च ३१ ॥

अर्थ--मति श्रुत अवधि ये तीन ज्ञान मिथ्या भी होय हैं जैसे कडवी तूंबी में रक्खा हुआ दुग्ध कटुक होय है तैसे मिथ्या श्रद्धानी का ज्ञानहू मिथ्या होय है ॥

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ३२ ॥

अर्थ--सत असत्य का विचार न करके इच्छा कर उनमत्त की नाई ग्रहण करने तें ज्ञानके विपर्ययपणा होय है ॥

नैगमसंग्रहव्यवहारऋजुसूत्रशब्दसमभिरूढैवंभूतानयाः ॥ ३३ ॥

अर्थ--जो अर्थ तो परिपूर्ण नहीं भया अर तिस विषय संकल्प मात्र का ग्रहण करनेवाला नैगम नय है ॥ उदाहरण ॥ जैसे कोऊ पुरुष इंधन जलादिक सामग्री ग्रहण करैथा तिसको कोऊ पूछा तुम कहा करो हो तदि वो कहे में भात पकाताहूं, तहां भात का पर्याय प्रगट नहीं

भया परन्तु भात का संकल्प करिके काय करै है तातें संकल्प मात्र का ग्राही नैगम नय है ॥ (१) अपनी जातिको प्रगट करकें पर्यायका भेद न करि कें समस्त का समुदाय ग्रहण करने वाला संग्रह नय है॥ उदाहरण ॥ बगीचा ॥ कहना बाजार कहना इत्यादि (२) संग्रह करिके कही वस्तु में विशेष जाने बिना प्रवृति नहीं होय यातें जहां ताईं दूसरो भेद नहीं होय तहां ताईं पृथक् पृथक् कहना सो व्यवहार नय प्रवर्त्तै है ॥ (३) पूर्वापर त्रिकाल विषयको छांड़ि के वर्तमान विषय मात्र का ग्रहण करनेवाला ऋजु सूत्र नय है ॥ अतीत तो बिनस गया अर अनागत उत्पन्न नहीं भया तातैं अतीत अनागत तें व्यवहारका अभावहै ॥ (४) लिंग संख्या साधनादिक के दोषको दूर करनेवाला शब्दनय है ॥ (५) नाना अर्थको छाड़ि करिकें एक अर्थको प्रधान करि स्थापित करनेवाला समभिरूढनय है (६) जिस स्वरूप करिके पदार्थ होय तिस स्वरूप करिकेंही निश्चय करावै सो एवंभूतनय है ॥ जैसे ऐश्वर्य्य क्रिया को प्राप्त होय ताको इन्द्र कहैं॥ पूजन करते अभिषेक करतेकू इन्द्र नहीं कहैं (७)॥

श्लोक—ज्ञान दर्शनयोस्तत्वं नयानांचैवलक्षणम् ।
ज्ञानस्यचप्रमाणत्त्वमध्यायेस्मिन्निरूपितम् ॥

अर्थ ॥ प्रथम अधिकारमें ज्ञानका दर्शनका नयका लक्षण कहा अरे ज्ञानका प्रमाण कहा ॥

इतितत्वार्थाधिगमेमोक्षशास्त्रेप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

॥ द्वितीयोऽध्यायः ॥

औपशमिकक्षायिकौभावौमिश्रश्चजीवस्यस्वतत्वमौदयिकपारिणामिकौच ॥ १ ॥

अर्थ ॥ औपशमिक, क्षायिक, और मिश्र कहिये क्षायोपशमिक, उदइक, पारिणामिक, ये पंचभाव असाधारण जीवका स्वतत्त्व हैं

द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदायथाक्रमम् ॥ २ ॥

अर्थ--उपशम के भाव दो प्रकार के हैं ॥ क्षायक के भाव नव प्रकार के हैं ॥ क्षयोपशमिक के भाव अष्टादश प्रकार के हैं ॥ उदयइक के भाव इकबीस प्रकार के हैं ॥ पारिमाणिकके भाव तीन प्रकारके हैं ऐसे त्रेपन भाव हैं ॥

सम्यक् चारित्रे ३ ॥

अर्थ--उपशमसम्यक्त उपशमचारित्र ऐसे दो प्रकार उपशम भाव हैं।

ज्ञान दर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणिच ४ ॥

अर्थ ॥ क्षायिकज्ञान, क्षायिकदर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य, अरुच शब्दकरि क्षायिकसम्यक्त्व क्षायिक चारित्र ऐसे नवप्रकार क्षायिक के भाव हैं ॥

ज्ञानाज्ञानदर्शन लब्धयश्चतुस्त्रित्रिपंचभेदाःसम्यक्त्वचारित्र संयमासंयमाश्च ॥ ५॥

अर्थ--मति, श्रुति, अवधि, मनः पर्यय, ये चार प्रकार ज्ञान अर कुमति कुश्रुति. कुअवधि, ऐसे तीन प्रकार अज्ञान अर चक्षुदर्शन अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, ऐसे तीन प्रकार दर्शन अर दान, लाभ, भोगउपभोग, वीर्य, ऐसे पंचप्रकार क्षयोपशम लब्धी अर क्षयोपशम सम्यक्त्व अर क्षयोपशमचारित्र अर संयमासंयम, ऐसे अष्टादश प्रकार क्षयोपशम भाव हैं ।

गतिकषायलिङ्गमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्धलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकषड्भेदाः ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ चार प्रकार गति, चार प्रकार कषाय, तीन प्रकार लिंग, अर मिथ्या दर्शन अज्ञान, असंयत, असिद्धत्व, अर छहप्रकार लेश्या ऐसे एकवीस प्रकार औदयिकके भाव हैं ॥

जीवभव्याभव्यत्वानिच ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व ॥ ऐसे तीन प्रकार पारिणमिक भाव हैं ॥

उपयोगोलक्षणम् ॥ ८ ॥

अर्थ ॥ जीविका उपयोग लक्षण है ॥

सद्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ॥ ९ ॥

अर्थ ॥ सो उपयोग दोय प्रकार है ॥ एक तो ज्ञानोपयोग सो अष्टप्रकार है ॥ दूजा दर्शनोपयोग सो दर्शन चार प्रकार है ॥

संसाररिणोमुक्ताश्च ॥ १० ॥

अर्थ ॥ संसारी अर मुक्त ऐसे दोय प्रकार के जीव हैं ॥

समनस्कामनस्काः ॥ ११ ॥

अर्थ ॥ समनस्क कहिये मनसहितते संज्ञी अर मनरहित ते असंज्ञी ऐसे संसारी जीव दोय प्रकार हैं ॥

संसारिणस्त्रसस्थावरा ॥ १२ ॥

अर्थ--त्रस और थावर ऐसे संसारी जीव दोय प्रकार हैं ॥

पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः १३ ॥

अर्थ--प्रथिवी, अप, अग्नि, वायु, वनस्पती, ऐसे स्थावर जीव के पंच भेद हैं ॥

द्विन्द्रियादयस्त्रसाः १४ ॥

अर्थ--बेइन्द्री तीन इन्द्री चौइन्द्री पंचेन्द्री ऐसे चार प्रकार के त्रस हैं।

पंचन्द्रियाणि १५ ॥

अर्थ--इन्द्री पांचही हैं।

द्विधानि १६ ॥

अर्थ--पांचा इन्द्रिय दोयप्रकार हैं। एक द्रव्येंद्रिय एक भावेंद्रीय ॥

निर्वृत्युपकरणे द्रव्येंद्रियम् ॥ १७ ॥

अर्थ=द्रव्येंद्रिय के दो भेद हैं ॥ एक निरबृत्ति अर एक उपकरण ॥ निर्वृत्ति के दोय भेद हैं अभ्यन्तर निर्बृत्ति वाह्यनिर्बृत्ति अब अभ्यन्तर निर्बृत्ति कहें हैं उत्सेध अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण शुद्धआत्मा का प्रदेश नेत्रादिक इन्द्रिय के आकार होयके इन्द्रियके स्थानमें तिष्ठै सो अभ्यन्तर निर्बृत्ति है ॥ अर पांच इन्द्रिय आकार परिणत रूप आतमप्रदेशनि विषै नाम कर्म के उदय करि इन्द्रियनि के आकार पुद्गल समूह तिष्ठै सो बाह्यनिर्वृति बहुरि जो निर्बृति को उपकारकरनेवाला होय सो उपकरण कहिये सो उपकरणहू दोय प्रकारहै। नेत्रनिमें शुल्क कृष्ण मंडलहै सो अभ्यन्तर उपकरण है अरवाफणी [पापन्या] पत्त (भवैया) ये वाह्य उपकरणहैं ॥ ऐसे समस्त इन्द्रियन का स्वरूप जानना ॥

लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम १८ ॥

अर्थ ॥ भावेन्द्रिय में दोय भेद हैं ॥ एक लब्धि अर एक उपयोग इन्द्रयज्ञाना वरणीय कम का क्षयोपशम का होना सो लब्धि है और लब्धिके सामर्थ्य तें आत्मा द्रव्येंयिद्रय रचना प्रति प्रवर्त्तन करे सो उपयोग है ॥ ऐसे दोय प्रकार भावेंद्री है ॥

स्पर्शनरसनघ्राण चक्षुः श्रोत्राणि १६ ॥

अर्थ ॥ स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र, ये पांच इन्द्रिय हैं ॥

स्पर्शरसगंधवर्णशब्दास्तदर्थाः ॥ २० ॥

अर्थ ॥ स्पर्श, रस, गंध, वर्ण शब्द, ये पंचइंद्रियन के पञ्च विषय हैं ॥

श्रुतमनिंद्रियस्य ॥ २१ ॥

अर्थ ॥ श्रुतज्ञान है सो मनका विषय है ॥

वनस्पत्यंतानामेकम् ॥ २२ ॥

अर्थ ॥ पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वनस्पतिकाय, इन पंच प्रकार के स्थावरजीव के एक स्पर्शन इन्द्रियही है ॥

कृमिपिपीलिका भ्रमरमनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि ॥ २३ ॥

अर्थ ॥ कृमीआदिक जीवके स्पर्शन, रसन, दोय इन्द्रिय हैं ॥ पिपीलिकादिकनिके स्पर्शन, रसन, घ्राण. ऐसे तीन इन्द्रिय हैं ॥ भ्रमरादिकके चक्षु सहित चार इन्द्रिय हैं ॥ सर्प गौ मनुष्यादिकके कर्ण सहित पञ्च इन्द्रिय हैं ॥ ऐसे इनके एक एक इन्द्रियकी वृद्धि है ।

संज्ञिनःसमनस्काः ॥ २४ ॥

अर्थ ॥ मन सहित है ते संज्ञी हैं ॥

विग्रहगतौकर्मयोगः ॥ २५ ॥

अर्थ ॥ विग्रह जे नवीन शरीर ग्रहण के अर्थ गमन करते समय कार्मानयोग है॥

अनुश्रेणिगतिः ॥ २६ ॥

अर्थं ॥ जीव मरन समय जो नवीन शरीर ग्रहण करनेके अर्थं गमन करै सो आकाशके प्रदेशनिकी सूधी पंक्तिमें गमन करै सूधीपंक्ती बिना विदिशादिकमें गमन नहीं है ॥ आकाशके प्रदेशकी श्रेणी पंक्तीरूप ऊर्ध पंक्तीरूप अधः पंक्तीरूपतिर्यक् गमन करै ॥

अविग्रहाजीवस्य ॥ २७ ॥

अर्थं ॥ कर्मरहित क्षायके जो जीव सिद्धालयको जाय है ताके कुटिलता रहित (सूधा) ऊर्ध गमनही है ॥

विग्रहवतीचसंसारिणःप्राक्चतुर्भ्यः ॥ २८ ॥

अर्थ ॥ संसारी जीव मरनकरि नवीन शरीर ग्रहन करने के अर्थ गमन करै है तहां कोऊ जीव तो सूधाही गमन करि जाय उपजै है ॥ कोई मोड़ा लेयजाय उपजै है कोई जीवके दोय मोड़ालिये उपजना होय है, कोऊ जाव तीन मोड़ा लेय उपजे है ॥ चतुर्थ मोडा लेय नहीं। चतुर्थ मोड़ालेने योग्य कोऊ दूर लम्बा क्षेत्रही नहीं है ॥

एकसमयाविग्रहः ॥ २९ ॥

अर्थं ॥ जो जीव मोड़ा रहित सूधीगती योग्यक्षेत्र में उपजै है ताकाकाल एक समयका है।

एकंद्वोत्रीन्वानाहारकाः ॥ ३० ॥

अर्थ ॥ जो जीव सूधाजाय उपजै है सो आहारकहै ॥ अर जो एक मोडालेय उपजै है सो एक समय अनाहारकहै, दूजे समय आहार ग्रहण करै ॥ दोय मोड़ालेय करि उपजे सो दोय समय अनाहारकहै, तीजे समय आहार ग्रहण करे ॥ तीनमोड़ा लेय उपजे सो तीन समय अनाहारकहै, चतुर्थ समय आहार ग्रहण करे ॥ इहां आहारका अर्थ ऐसा समझना, जो जीव मरन करि दूसरी गतीमें उपजे तहां माता के गर्भमें षटपर्याप्तिका ग्रहण तथा योग्य पुद्गलका ग्रहण करणा सो आहारहै ॥ सो आहार विग्रहगती में नहीं है तातें अनाहारक है ॥ अन्य औसरमें समस्त संसारी जीव आहारकही हैं ॥ अर कर्म वर्गनाका ग्रहण विग्रहगतीमें भी है ॥

सन्मूर्च्छानगर्भोपपादाजन्म ॥ ३१ ॥

अर्थ ॥ त्रैलोक्य विषे ऊपरे नीचे तिर्यक् समस्त क्षेत्रमें नो (नवीन) पुद्गल का ग्रहण करि देहका उपजना सो सन्मूर्छान जन्महै ॥ अर स्त्रीके उदर विषै माता का रुधिर पिता के वीर्य को ग्रहण करि देह का उपजना सो गर्भज जन्म है ॥ अर देवनि के तथा नारकीके उपपाद स्थाननि में पुद्गल ग्रहणकरि उपजना सो उपपाद जन्म है ॥ ऐसे तीन प्रकार जन्म है ॥

सचित्तशीतसंवृताःसेतरामिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ॥ ३२ ॥

अर्थ ॥ सचित्त (१) अचित्त (२) सचित्त अचित्तका मिश्र (३) शीत (४) उष्ण

(५) शीत उष्ण दोऊ मिश्र (६) संवृत्त (७) निवृत्त (८) संवृत्त निवृत्त दोऊका मिश्र (९) ऐसे नव प्रकार के पुद्गल जीवकी उत्पत्ति होने योग्य नव योनि हैं इनके चौरासी लाख भेद हैं ॥

जरायुजांडजपोतानांगर्भः ॥ ३३ ॥

अर्थ ॥ जरायुज (१) अंडज (२) पोत (३) ये तीन भेद गर्भ जन्म होनेके हैं ॥ जरा पटल में उपजै ते जरायज हैं ॥ अंडे में उपजै ते अंडजहैं ॥ अर जो जरा पटलमें तथा अंडे नहीं उपजे सो पोतज है ये तीन प्रकारका जन्म माता पिता के संयोगते होय है ॥

देवनारकाणामुपपादः ॥ ३४ ॥

अर्थ ॥ देवकै अर नारकी के उपपाद जन्म है ॥

शेषाणांसन्मूर्छनम् ॥ ३५ ॥

अर्थ ॥ गर्भज अर उपपाद विना उपजै ते सन्मूर्छन जन्म है ॥

औदारिकवैक्रियकाहारकतैजसकार्मणानिशरीराणि ॥ ३६ ॥

अर्थ । औदारिक (१) वैक्रियक (२) आहारक (३) तैजस (४) कार्माण (५) ऐसे पञ्चप्रकार के शरीर हैं ।

परंपरंसूक्ष्मम् ॥ ३७ ॥

अर्थ ॥ पञ्च प्रकार के शरीर कहे सो एकते एक सूक्ष्म है ॥ आहारकतें वैक्रियक शरीर

सूक्ष्महै ॥ वैक्रियकशरीर हैं आहारकशरीरसूक्ष्महै आहारक शरीरतें तैजस शरीर सूक्ष्म है ॥ अर तैजस शरीरतैं कार्माण शरीर सूक्ष्म है ॥

प्रदेशतोसंख्येयगुणंप्राक्तैजसात् ॥ ३८ ॥

अर्थ ॥ औदारिक शरीरतैं वैक्रियक शरीरके असंख्यातगुणे प्रदेश अधिकहैं अर वैक्रियक शरीरतैं अहारे शरीर के असंख्यात गुणे प्रदेश अधिक हैं ॥

अनंतगुणेपरे ॥ ३९ ॥

अर्थ ॥ आहारक शरीरतैं तैजस शरीर के अनन्त गुणे प्रदेश अधिक हैं ॥ तैजस शरीरतैं कार्माण शरीरकै अनन्त गुणे प्रदेश अधिक हैं ॥

अप्रतीघाते ॥ ४० ॥

अर्थ ॥ तैजस शरीर अर कार्माण शरीर समस्त त्रैलोक्य में वज्रपटलादिक में हू नहीं रुकै है

अनादिसम्बन्धेच ॥ ४१ ॥

अर्थ ॥ इस जीवकै तजस अर कार्माण शरीरका संबंध अनादिकालते है अर जबलों मुक्ति नहीं होगा तहां तांई रहेगा ॥

सर्बस्य ॥ ४२ ॥

अर्थ ॥ तैजस अर कार्माण ये दोऊ शरीर समस्त संसारी जीवकै हैं ॥

तदादीनिभाज्यानियुगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥

अर्थ ॥ एक जीवकै एक कालमें तैजस कार्माणकूं आदिलेय च्यारशरीरतांई होयहै ॥ कोऊकै तैजस शरीर अर कार्माणशरीर ऐसै दोयशरीर होयहैं ॥ कोऊ कै औदारिक, तैजस, कार्माण, ऐसे तीन शरीर होयहैं ॥ तथा कोऊकै वैक्रियक, तैजस, कार्माण, ऐसैं हूं तीनशरीर होयहैं ॥ कोऊकै औदारिक, आहारक, तैजस, कार्माण, ऐसें च्यारशरीर होयहैं ॥

निरुपभोगमन्त्यम् ॥ ४४ ॥

अर्थ ॥अंतकाजो कार्माण शरीर ताकै इंद्रिय द्वारे शब्दादिक विषयनिका उपभोग नहीं है

गर्भसम्मूर्छनजमाद्यम् ॥ ४५ ॥

अर्थ ॥ गर्भज अर सन्मूर्छन ये दोऊ शरीर औदारिक हैं ॥

औपपादिकम्वैक्रियम् ॥ ४६ ॥

अर्थ ॥ उपपादिक जन्म मै उपज्याकै वैक्रियक शरीर है ॥

लब्धिप्रत्ययंच ॥ ४७ ॥

अर्थ ॥ तपतैं उपजी ऋद्धीतैंहू वैक्रियक शरीर होय हे ॥

तैजसमपि ॥ ४८ ॥

अर्थ ॥ तैजसशरीरहु ऋद्धीतै होय है ॥

शुभंविशुद्धमव्याघातिचाहारकंप्रमत्तसंयतस्यैव ॥ ४९ ॥

अर्थ ॥ आहारकशरीर प्रमतसंयमी साधूकै कोऊ होयहै ॥ सो शुभकर्मतै उपज तातैं शुभहै, शुद्धकार्यकरै तातैं शुद्ध है।आहारक शरीर कोऊ पदार्थतै रुकै नांहिं तात अव्याघात है ॥

नारकसम्मूर्छिनो नपुंसकानि ॥ ५० ॥

अर्थ ॥ नारकी जीवकै अर सन्मूर्छनजन्मवाले जीवकै नपुंसकलिंगही होय है और दोय लिंग नहीं होय ॥

नदेवाः ॥ ५१ ॥

अर्थ ॥ देवनि कै नपुंसकलिंग नहीं होय है

शेषास्त्रिवेदाः ॥ ५२ ॥

अर्थ ॥ शेषकहिये नारकी अर सन्मूर्छन अर देव इन बीना कर्मभूमी के गर्भज मनुष्य अर गर्भजतिर्यंच इन के तीनों वेद होय हैं ॥ अर भोगभुमी के मनुष्य तथा तिर्यंच के पुरुषवेदअरस्त्रीवेदयहदोय वेदही हैं

औपपादिकचरमोत्तमदेहासंख्येयवर्षायुषोनपवर्त्यायुषः ॥ ५३ ॥

अर्थ ॥ देव अर नारकी अर चरमोत्तम देहके धारी अर असंख्यातवर्ष आयु के धारी भोग भूमी के मनुष्य अर तिर्यंच इनका आयु विष शस्त्रादिक बाह्यनिमित्त तैं नाहीं छिदै है

इतितत्वार्थाधिगमेमोक्षशास्त्रेद्वितीयोध्यायः ॥ २ ॥

॥ अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

रत्नशर्करवालुकापंकधूमतमोहातमः प्रभाभूमयोघनांबुवाता काशप्रतिष्ठाः सप्ताधोधाः ॥ १ ॥

अर्थ ॥ रत्नप्रभा १ शर्कराप्रभा २ वालुकप्रभा ३ पंकप्रभा ४ धूमप्रभा ५ तमप्रभा ६ महातम प्रभा ७ ये सप्तभूमी नीचे नीचे अवस्थित हैं ॥ अगर घनोदधि पवन १ घनपवन १ तनपवन १ अर आकाश इनकरि वेष्टित हैं ॥

तासुत्रिंशत्पंचविंशतिपंचदशदशत्रिपंचोनैकनरकशत सहस्राणिपंचचैवयथाक्रमं ॥ २ ॥

अर्थ ॥ सप्तनरकमें अनुक्रमतें चौरासीलाख बिलें हैं ॥ १ में तीसलाख॥ २ मेंपचीसलाख ॥ ३ में पन्द्रहलाख॥ ४ में दशलाख ॥ ५ में तीनलाख ॥ ६ में पांचकम एकलाख ॥ ७ में पांच॥ सेऐ सब मिलिके चौरासीलाख भये

नारकानित्याशुभत रलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रयाः ॥ ३ ॥

अर्थ॥ नरक में जीवकी निरन्तर अत्यन्त अशुभलेश्या अतिअशुभ परिणाम अति अशुभ देह अतिअशुभवेदना अतिअशुभविक्रिया हैं ॥

परस्परोदीरितदुःखाः ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ नरक गें जीव एक मेक कै परस्पर देखने मात्र तैही कोपाग्नि करि प्रज्वलित भये नाना प्रकार के दुःखको परस्पर प्रगट देवे हैं ॥

संक्लिष्टासुरोदीरितदुःखाश्चप्राक्चतुर्थ्यः ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ क्लेशपरिणाम के धारक असुर कुमार जाति के देव तीसरा नरक पर्यंत जायकै जातिस्मरण कराय दुःख उपजावै हैं तीसरा नरक पर्यन्तही असुर कुमार देव जाय आगै नहीं जाय ॥

तेष्वेकत्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमासत्वानांपरास्थितिः ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ नरक की सप्तपृथ्वी विषै नारकी जीव का उत्कृष्ट आयु कहैं हैं ॥ पहिला नरक में एक सागर ॥ दूसरा नरक में तीन सागर ॥ तिसरा नरक में सप्त सागर चोथा नरक मे दश सागर ॥ पाचवा नरक मैं सत्रहसागर ॥ छट्ठा नरक में बाईस सागर ॥ सातवां नरक में तैंतीस सागर हैं ॥ ऐसा प्रमाण अनुक्रमतै हैं ॥ (अब जघन्य आयु कहैं ॥ पहिला नरक में दशहजार वर्ष ॥ दुसरा नरक में एक सागर ॥ तीसरा नरक में तीन सागर ॥ चौथा नरक में

सात सागर ॥ पांचवा नरक में दस सागर ॥ छट्ठा नगर में सत्रह सागर ॥ सातवा नरक में बाईस सागर हैं)

जंबूद्वीपलवणोदादयःशुभनामानोद्वीपसमुद्राः ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ मध्यलोक में जंबूद्वीपादिक द्वीप अर लवणोदादिक समुद्र शुभनाम के धारक ऐसें असंख्यात द्वीप अर असंख्यात समुद्र हैं ॥

द्विर्द्विर्विष्कंभाःपूर्वपूर्वपरिक्षेपिणोवलयाकृतयः ॥ ८ ॥

अर्थ ॥ ये द्वीप अर समुद्र दूने दूने हैं ॥ द्वीप से समुद्रदूना है अर समुद्र से द्वीप दूना है ॥ द्वीपको समुद्रवेढै हैं अर समुद्र को द्वीप वेढै हैं ॥ समस्त द्वीप अर समुद्र कंकणके आकार गोलाकार हैं ॥

तन्मध्येमेरुनाभिर्वृत्तोयोजनशतसहस्रविष्कंभोजंबूद्वीपः ॥ ९ ॥

अर्थ ॥ समस्द्वीप समुद्रके मध्य एक लक्षयोजनका चौड़ा सूर्य मण्डल के आकार जम्बूद्वीप है ॥ अर गोल जम्बूद्वीप के मध्य मेरु पर्वत है ॥ मनुष्य के शरीर के मध्य भाग में नाभि है

तैसा जम्बूद्वीप के बीच मध्य मेरु पर्वत है॥ सो मेरु पर्वत मूलमें दस हजार यजनका मोटा है ॥

भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाःक्षेत्राणि ॥ १० ॥

अर्थ ॥ भरत १ हैमवत २ हरि ३ विदेह ४ रम्यक ५ हैरण्यवत ६ ऐरावत ७ ये सप्त क्षेत्र जम्बूद्वीप में हैं ॥

तद्विभाजिनःपूर्वापरायताहिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरुक्मिशिखरिणोवर्षधरपर्वता, ॥११ ॥

अर्थ ॥ ये सप्त क्षेत्रके भागकरनेवाले छह पर्वत हैं इसकू कुलाचल कहते हैं वा वर्षधर पर्वतही कहते ॥ उसीका नाम हिमवान पर्वत, महाहिमवान् पर्वत, निषध पर्वत, नीलपर्वत, रुक्मिपर्वत, शिखरीपर्वत, ॥ ये छह वर्षधरपर्वत जम्बूद्वीप में हैं सो पूर्व पश्चिम लम्बे हैं ॥

हेमार्जुनतपनीयवेडूर्यरजतहेममयाः ॥ १२ ॥

अर्थ ॥ हिमवान पर्वत सुवर्ण वर्णका है॥ महाहिमवान पर्वत शुभ्रवर्णका है॥ निषध-पर्वत तपाये सुवर्णवर्णका है॥ नील पर्वत वैडूर्यमणिवत् नीलवर्णका है॥ रुक्मी पर्वत रजत-

कहिये रूपावर्ण का है ॥ शिषरी पर्वत सुवर्ण वर्ण का है ॥

मणिविचित्रपार्श्वोपरिमूलेचतुल्यविस्ताराः ॥ १३ ॥

अर्थ ॥ ये छह कुलाचल पर्वत नाना वर्ण प्रभादि गुण सहित मणिकरिविचित्र पसवाडे को धारै हैं ॥ अर उपरमै मूलमै अर मध्यमै ॥ भीत के समान चौडे हैं ॥

पद्ममहापद्मतिगंछकेशरिमहापुण्डरीकपुण्डरीकाह्रदास्तेषामुपरि ॥ १४ ॥

अर्थ ॥ हिमवानादि छह पर्वत के ऊपर छह सरोवर हैं ॥ तिनके नाम कहे हैं पद्म सरोवर १ महा पद्मसरोवर १ तिगिंछसरोवर १ केशरी सरोवर १ पुण्डरीक सरोवर १ महापुण्डरीक सरोवर १ ये छह ह्रद (द्रह) जलके भरे हैं ॥

प्रथमयोजनसहस्रायामस्तदर्द्ध विष्कंभोह्रदः ॥ १५ ॥

अर्थ ॥ पद्मनामका प्रथम पूर्व पश्चिम हजार योजन लम्बा है अर दक्षिण उत्तर पांचसै योजन चौड़ा है ॥ वज्रमय तल है नानामणि सुवर्ण करि विचित्र तट है ॥

दशयोजनावगाहः ॥ १६ ॥

अर्थ ॥ पद्मनामका प्रथम द्रह दसयोजन उंडा (खोल) है ॥

तन्मध्येयोजननंपुष्करं ॥ १७ ॥

अर्थ ॥ पद्मनामद्रहविषै एक योजनका कमल है ॥

तद्विगुणद्विगुणाह्रदाः पुष्कराणिच ॥ १८ ॥

अर्थ ॥ द्वितीय महापद्मद्रहकी लम्बाई चौड़ाई ऊंडाई का प्रमाण पद्मद्रहतै दूना है अर महापद्मद्रहका प्रमाणतै तिगिंछद्रहका प्रमाण दूना है ॥ ऐसैं ही कमल को प्रमाण दूनाहै ॥

तन्निवासिन्योदेव्याः श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यःपल्योपमस्थितयःसमामानकपरिषत्काः ॥ १९ ॥

अर्थ ॥ वो कमलनी मै वसनेवाली छह देवी हैं ॥ श्री देवी ह्री देवी धृति देवी कीर्ति देवी बुद्धि देवी लक्ष्मी देवी ॥ ये छह भवनवासिनी देवी हैं ते अपने समानीक देवो अर सभा निवासिनी देवकरियुक्तवसै हैं ॥

गगासिंधुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकांतासीतामीतोदानारीनरकांतासुवर्णरूप्यकूलारक्तारक्तोदास रितस्तन्मध्यगाः ॥ २० ॥

अर्थ ॥ ये सप्तक्षेत्रके मध्य गमन करनेवाली चतुर्दश नदी हैं ॥ गंगा १ सिंधू २ रोहित ३ रोहितास्या ४ हरित् ५ हरिकांता ६ सीता ७ सीतोदा ८ नारी ९ नरकांता १० सुवर्णकूला ११ रूप्यकूला १२ रक्ता १३ रक्तोदा १४ ॥ ये चौदह महा नदी हैं ॥

द्वयोर्द्वयोःपूर्वाःपूर्वगाः ॥ २१ ॥

अर्थ ॥ चतुर्दशनदीमैं, दोयदोय नदी मैं जो प्रथम नदी कही सो पूर्वसमुद्र मे गमन करनेवाली है ॥

शेषास्त्वपरगाः ॥ २२ ॥

अर्थ ॥ दोय दोय नदी मै पीछे नदी कही सो पश्चिम दिसाके समुद्रमें गमन करनेवाली है ॥

चतुर्दशनदीसहस्रपरिवृत्तागंगासिंध्वादयोनद्यः ॥ २३ ॥

अर्थ ॥ गंगा नदी अर सिंधू नदी चतुर्दश सहस्र चतुर्दश सहस्र नदी करि परिवारित हैं ॥ आगे रोहित नदी कै अर रोहितास्यानदी कै अठाईस अठाईस हजार नदीका परिवार है। आगे हरित नदीकै अर हरिकांता नदी कै छप्पन छप्पन हजार नदीका परिवार है ॥ सीतानदीके

अर सीतोदा नदीकै चौरासी हजार चौरासी हजार नदीका परिवार है ॥ नारी नदीकै अर नरकांता नदीकै छप्पन हजार छप्पन हजार नदीका परिवार है ॥ सुवर्णकूला नदीकै अर रूप्यकूलानदीकै अठाईस हजार अठाईस हजार नदीका परिवार है ॥ रक्तानदीकै अर रक्तोदा नदीकै चौदह चौदह हजार नदीका परिवार है ॥

भरतःषड्विंशतिपंचयोजनशतविस्तारःषट्चैकोनविंशतिभागायोजनस्य ॥ २४ ॥

अर्थ ॥ भरतक्षेत्रका दक्षिण उत्तर विस्तार पांचसैछब्बीस योजन अर छहकला हैं ॥

तद्विगुणद्विगुणविस्तारःवर्षधरवर्षाविदेहांताः ॥ २५ ॥

अर्थ ॥ भरतक्षेत्रते द्विगुण विस्तार हिमवन् पर्वत का है अर हिमवन् पर्वत ते हिमवन् क्षेत्रका दूना विस्तार है ॥ ऐसें विदेह पर्यंत पर्वत अर क्षेत्रका विस्तार दूना दूना है ॥

उत्तरादक्षिणतुल्यः ॥ २६ ॥

अर्थ ॥ विदेहतैपरै उत्तरदिशाके पर्वत क्षेत्र नदी द्रह कमलादिक है ॥ सो दक्षिण दिशा के भरतादिक क्षेत्र अर हिमवन् आदिक पर्वत के समान हैं ॥

भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौषट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्यां ॥ २७ ॥

अर्थ ॥ भरत अर ऐरावत क्षेत्रमै उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल के निमित्त करि मनुष्य अर तिर्यंचका आयु कायादिक घटै है वा बढ़ै है ॥

ताभ्यामपराभूमयोवस्थिताः ॥ २८ ॥

अर्थ ॥ भरतक्षेत्र अर ऐरावत क्षेत्रतै अन्यक्षेत्रकी भूमी अवस्थित है तहां कालकरि घटति बढ़ति नहीं है ॥

एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयोहैमवतकहारिवर्षकदैवकुरवकाः ॥ २९ ॥

अर्थ ॥ हिमवन्क्षेत्र मै उपजै मनुष्यनिकाआयु एकपल्यका प्रमाण है ॥ हरिक्षेत्रमै मनुष्यका आयू दोय पल्यका प्रमाण है ॥ देव कुरूमै उपजै मनुष्यका आयु तीन पल्यका है

तथोत्तराः ॥ ३० ॥

अर्थ ॥ उत्तर के क्षेत्र जे हैरण्यगत, रम्यक,उत्तरकुरू, इनमै उपजै मनुष्य का आयु एक पल्य, दोय पल्य, राय व तीन पल्य, प्रमाण हैं ॥

विदेहेषुसंख्येयकालाः ॥ ३१ ॥

अर्थ ॥ विदेहक्षेत्र विषे मनुष्य का संख्यात काल का आयु है ॥

भरतस्यविष्कंभो जंबूद्वीपस्य नवतिशतभागः ॥ ३२ ॥

जम्बूद्वीप का एक सौ नव्वे भाग करना उसी में एक भाग प्रमाण भरत क्षेत्र है ॥

द्विर्द्धातकीखंडे ॥ ३३ ॥

अर्थ ॥ धातकी द्वीप में भरतादिकक्षेत्र दोय दोय हैं ॥

पुष्करार्द्धेच ॥ ३४ ॥

अर्थ ॥ पुष्कर द्वीप का अर्धभाग में भी भरतादिक क्षेत्र दोय दोय हैं ॥

मानुषोत्तरान् मनुष्याः ॥ ३५ ॥

अर्थ ॥ मानुषोत्तर पर्वततांईही मनुष्य हैं। मानुषोत्तर के बाह्यक्षेत्र मनुष्य नाही हैं ॥

आर्याम्लेछाश्च ॥ ३६ ॥

अर्थ ॥ आर्य अर म्लेछ ऐसे दोय प्रकार के मनुष्य हैं ॥

भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोन्यत्रदेवकुरूत्तरकुरूभ्यः ॥ ३७ ॥

अर्थ ॥ पंच भरत पंच ऐरावत पंचविदह ये पंद्रहक्षेत्र में कर्म भूमी हैं देवकुरु अर उत्तर कुरूमें कर्मभूमी नहीं हैं ।

नृस्थितीपरावरे त्रिपल्योपमांतर्मुहूर्ते ॥ ३८ ॥

अर्थ ॥ मनुष्य की उत्कृष्टआयतीन पल्य की है अर जघन्यआय अन्तर्मुहूर्तकी है ।

तिर्तग्योनिजानांच ॥ ३९ ॥

अर्थ ॥ तिर्यंचकीहूं उत्कृष्टआयु तीनपल्य की है जघन्यआयु अंतरमुहूर्तकी है ॥

इतितत्वार्थाधिगमेमोक्षशास्त्रेतृतीयोध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोध्यायः

देवाश्चतुर्निकायाः॥ १ ॥

अर्थ ॥ देव चार प्रकार हैं ॥

आदितस्त्रिपुपीतांतलेश्याश्याः ॥ २ ॥

अर्थ ॥ भवनवासी देव, व्यन्तर देव, ज्योतिपीदेव, इन तीनों काय में कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पर्यंत च्यारही लेश्या हैं ॥

दशाष्टपंचद्वादशविकल्पाः कल्पोपन्नपर्यंताः ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ भवनवासीदेव में दश प्रकार हैं॥ व्यन्तरदेव अष्ट प्रकार हैं ॥ ज्योतिषी देव पंच प्रकार हैं ॥ कल्पवासी कहिये स्वर्गवासीदेव बाराप्रकार हैं ॥

इन्द्रसामानिकत्रायस्त्रिंशत्पारिषदात्मरक्षलोकपालानीकप्रकीर्णकाभियोग्यकिल्वषिकाश्चैकशः॥४॥

अर्थ ॥ देव दश प्रकारे हैं सो कहै हैं । इन्द्रदेव १ समानिक देव १ त्रायस्त्रिंशत्देव १ पारिषददेव १ आतमरक्षकदेव १ लोकपालदेव १ अनीकदेव १ प्रकीर्णकदेव अभियोग्य

देव १ किल्विषदेव १ ऐसैं दश भेद हैं ॥ समस्तदेव ऊपर जाकी आज्ञा हुकुम होय सो इन्द्र है ॥ १ ॥ जे देव कै स्थान, आयु, शक्ती, भोग, उपभोग परिवार, इत्यादिक इन्द्र के समान होय परन्तु आज्ञा ऐश्वर्य इन्द्र के समानही होय ऐसे देव, इन्द्र के पिता समान गुरू समान उपाध्या समान है सो सामानिक देव हैं ॥ १ ॥ जे देव मंत्रीसमान पुरोहित समान है सो त्रायात्रिंशत्देव है ॥ १ ॥ सभामें बैठने वाले जे देव हैं सो पारिषद देव हैं ॥ १ ॥ जे देव शस्त्र धारन करने वाले सुभट समान हैं सो आत्मरक्षक देव हैं ।१। अर द्वारपाल समान जे देव हैं सो लोक पाल देव हैं ॥ १ ॥ सेन्या समान देव हैं ते आनिक देव हैं ॥ १ ॥ जे देव नगर निवासी प्रजा के समान हैं सो प्रकीर्णकदेव हैं ॥ १ ॥ जे देव वाहनादिक कर्म में प्रवर्तनेवाले हैं सो अभियोग्यदेव हैं ॥ १ ॥ चांडालादि समान, इन्द्र की सभा में न प्रवेश करनेवाले सो किल्विषिदेव हैं ॥ १ ॥ ऐसें देव दशप्रकार हैं

त्रायस्त्रिंशल्लोकपालवर्ज्या व्यंतरज्योतिष्काः ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ व्यंतरदेव अर ज्योतिषी देव मैं त्रायस्त्रिंशत् अर लोकपाल देव नहीं हैं ॥

पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ॥ ६ ॥

अर्थ। भवनवासी देव अर व्यन्तर वासी देव इन में दोय दोय चन्द्र हैं ॥

कायप्रवीचाराआए शानात् ॥ ७ ॥

अर्थ। भवनवासी देव व्यन्तरवासी देव ज्योतिषी देव सौधर्म्म स्वर्ग अर ईशानस्वर्ग के देव इनको शरीर तैं मैथुन है ॥

शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचाराः ॥ ८ ॥

अर्थ ॥ तीसरा सनत्कुमार स्वर्ग अर चौथा माहेंद्र स्वर्ग येस्वर्गदेव देवांगना के अंग का स्पर्श मात्र तैं परमप्रीतिनै प्राप्त होय हैं काम तृप्त होय है ॥ पांचमा ब्रह्मस्वर्ग छट्टा ब्रह्मोत्तरस्वर्ग सातवां लांतवस्वर्ग आठवां कापिष्टस्वर्ग ये चार स्वग के देव देवांगना रूप मात्र अवलोकन करते काम तृप्ति होय हैं॥ नवमाशुक्र स्वर्ग दशमा महाशुक्रस्वर्ग ग्यारमा शतार स्वर्ग बारमा सहस्रारस्वर्ग ये चार स्वर्ग के देव देवांगना मधुरगोत शब्द सुनिकरि कामकी तृप्ति होय हैं। तेरमा आणत स्वर्ग चौदवां प्राणतस्वर्ग पंद्रवा आरणस्वर्ग सोलवा अच्युत स्वर्ग ये चार स्वर्ग

के देव देवांगना का मनमेंचिंतवन करने तेही कामकी तृप्ति होय हैं ।

परेप्रवीचाराः ॥ ९ ॥

अर्थ । सोला स्वर्ग के ऊपर के समस्त अहमिंद्र देव के कामबेदना का लेशही नहीं है ताते अप्रवीचार है मैथुन रहित हैं ।

भवनवासिनोसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितो दधिद्वीपदिक्कुमाराः ॥ १० ॥

अर्थ । भवनवासी देव दशप्रकार हैं सो कहे हैं । असुरकुमार १ नागकुमार १ विद्युतकुमार १ सुपर्णकुमार १ अग्निकुमार १ बात कुमार १ स्तनित कुमार १ उदधि कुमार १ द्वीप कुमार १ दिक्कुमार १ ये दशप्रकार के भवनवासी देव हैं तिनका वेष भूषण आयुध वाहन गमन क्रीडन इत्यादि कुमारवत् हैं । तातें तिनके कुमार संज्ञा हैं।

व्यंतराः किन्नरकिंपुरुषमहोरगगंधर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः ॥ ११ ॥

अर्थ । व्यन्तरदेव अष्टप्रकार हैं सो कहें हैं किन्नर १ किंपुरुष १ महोरग १ गंधर्व १ यक्ष १ राक्षस १ भूत १ पिशाच १ ये अष्टप्रकार के व्यन्तरदेव हैं सो नानादेशनि मै निवास करनेवाले

गमन करने वाले व्यन्तर हैं ॥

ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ॥ १२ ॥

अर्थ ॥ ज्योतिष्क देव पंच प्रकार हैं सो कहें हैं ॥ सूर्य १ चन्द्र १ ग्रह १ नक्षत्र १ तारा १ ।

मेरुप्रदक्षिणानित्यगतयोनृलोके ॥ १३ ॥

अर्थ । ये पंचप्रकार के ज्योतिषी देव हैं सो मेरुके नित्यप्रदक्षिणा करे हैं। मेरु को ग्यारासै इक्कीस योजन छोड़के विचरे हैं शाश्वतागमन करे हैं । नरलोक जे अढ़ाईद्वीप अर दोय समुद्र में पंचप्रकार के ज्योतिषी हैं सोही मेरु के प्रदक्षिणा करे हैं ।

तत्कृतःकालविभागः ॥ १४ ॥

अर्थ । ज्योतिषी देव गमन करे हैं तासे कालकाविभाग भया है । काल जाना जाना है ।

वहिरवस्थिताः ॥ १५ ॥

अर्थ । मनुष्य लोकके बाहर पञ्चप्रकार के ज्योतिषी देव है सो गमन नहीं करें जहां के तहां

स्थिर हैं अवस्थित हैं।

वैमानिकाः ॥ १६ ॥

अर्थ ॥ ज्योतिषी देव के ऊपर स्वर्ग है तहां वैमानिक देव है ।

कल्पोपन्नाः कल्पातीताश्च ॥ १७ ॥

अर्थ ॥ वैमानिक देव दो प्रकार है । एक कल्पोपपन्न अर एक कल्पातीत । सोलास्वर्ग के देव में इन्द्रादिक दश प्रकार के भेद हैं कल्पना है सोकल्पोपपन्नदेव है अर सोलास्वर्ग के ऊपर ग्रैवेयकादिक विमानन में इन्द्रादिक दश भेद नहीं है सो कल्पातीत देव हैं ।

उपर्युपरि ॥ १८ ॥

अर्थ । ये कल्प जे हैं ते ऊपरे ऊपर हैं । नगर ग्रामादिक ज्यों तिरछाटेढा नहीं हैं ॥ सौधर्मस्वर्ग दक्षिण में है ॥ ईशान स्वर्ग उत्तर में है ॥ ये दोऊ समक्षेत्र में हैं तिनके ऊपर दोय दोय स्वर्ग है ॥

र्थ

२॥

सौधर्मैशानसनत्कुमारमाहेंद्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलांतवकापिष्टशुक्रमहाशुक्र
शतारसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसुग्रैवेयकेषुवि
जयवैजयंतजयंतापराजितेषुसर्वार्थसिद्धौच ॥ १९ ॥

अर्थ। सौधर्म ० ईशान ० सनत्कुमार ० माहेन्द्र ० ब्रह्म ० ब्रह्मोत्तर ० लांतव ० कापिष्ट ० शुक्र ० महाशुक्र ० शतार ० सहस्रार ० आणत ० प्राणत ० आरण ० अच्युत ० ये सोलह स्वर्ग हैं ॥ सोलह स्वर्ग के ऊपर नव विमान ग्रैवेक हैं तिनके ऊपर अनुदिश विमान नव हैं तिनके ऊपर अनुत्तर विमान पांच हैं ॥ ऐसें वैमानिक देव लोक हैं ।

स्थितिप्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धींद्रियावधिविषयतोधिकाः ॥ २० ॥

अर्थ ॥ स्वर्गवासी वैमानिक देव की पटल पटल प्रति आयु बंधती हैं ॥ सापानुग्रह शक्ति रूप प्रभाव अधिक हैं ॥ इन्द्रियक विषयका सुख अधिक हैं ॥ शरीर वस्त्र आभरणादिक की कांति अधिकहे ॥ लेश्या की उज्जलता अधिक है ॥ इन्द्रिय का विषय जानने की शक्ति

अधिक है ॥ अवधि ज्ञान का विषय अधिक हैं ॥

गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतोहीनाः ॥ २१ ॥

अर्थ ॥ वैमानिकदेव नीचेकेदेवनि तै ऊपर के देव पलट पलट प्रति अन्यक्षेत्रमै गमन अर शरीर की ऊचता अर परि ग्रहा का अभिमान ये घटती घटती हैं ॥

पीतपद्मशुक्ललेश्याद्वित्रिशेषेषु ॥ २२ ॥

अर्थ ॥ स्वर्गके दोय युगल के च्यार स्वर्गमैपीतलेश्याहे अर तीनयुगल के छह स्वर्ग मै पद्म लेश्या हैं ॥ शेष रहे तिनमे शुक्ललेश्या हे ॥

प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पः ॥ २३ ॥

अर्थ ॥ पहिला सौधर्म स्वर्ग से सोलमास्वर्ग पर्यंत कल्प संज्ञा है

ब्रह्मलोकालयालौकांतिकाः ॥ २४ ॥

अर्थ ॥ ब्रह्मलोक जो पांचमा स्वर्ग तहां लौकांतिकदेव का स्थान है ॥

सारस्वतादित्यवन्ह्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याधारिष्टाश्च ॥ २५ ॥

अर्थ ॥ लोकांतिकदेव अष्टप्रकार हें सो कहें हें ॥ सारस्वत १ आदित्य १ वन्हि १ अरूण १ गर्दतोय १ तुपित १ अव्याबाध १ अरिष्ट १ इनमें अवांतर और हूं अनेक प्रकार हें, हीनता अधिकता रहित हें सर्वसामान्य हे ये समस्त देवनिकरि पूज्य देवऋषि हें ॥ द्वादशांग के धारक हें ॥ देवलोक सूं चयकर मनुष्य होय निर्वाण ही जाय हें ॥ अन्य भव नहीं धारे हैं

विजयादिषुद्विचरमाः॥ २६ ॥

अर्थ ॥ विजय वेजंयन्त जयंत अपराजित तथा नव अनुदिश विमान इनके देव मनुष्य के दोय भव धारन कर निर्वाण जाय हैं ॥

औपपादिकमनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ॥ २७ ॥

अर्थ ॥ उपपादिक जे, देव अर नारकीका जन्म उपपाद हैं॥ देवनारकी और मनुष्य इन तीनो बिना अन्य समस्त तिर्यंच हैं ॥

स्थितिसुरनागसुपर्णद्वीपशेषाणांसागरोपमत्रिपल्यो पमार्द्धहीनमिताः ॥ २८ ॥

अथ ॥ असुर कुमार का आयु एक सागर का है ॥ नाग कुमार का आयु तीन पल्य का है ॥ सुपर्ण कुमार का आयु अढाइ पल्य का है ॥ द्वीपकुमार का आयु दोंय पल्य का है॥ शेष छहकुमार का आयु डेड डेड पल्य का है ॥

सौधर्मैशानयोः सागरोमपेअधिके ॥ २९ ॥

अर्थ ॥ सौधर्म स्वर्ग अर इशानस्वर्ग के देव का उत्कृष्टआयु दोंय सागरकछु अधिक है॥

सनत्कुमारमाहेंद्रियों सप्तः ॥ ३० ॥

अर्थ ॥ सनत्कुमार स्वर्ग माहेन्द्र स्वर्ग के देव का आयु सप्तसागरतें कछु अधिक है ॥

त्रिसप्तनवैकादशत्रयोदशपंचदशभिरधिकानितु ॥ ३१ ॥

अर्थ ॥ ब्रह्म स्वर्ग के ब्रह्मोतरस्वर्ग के देव का आयु दशसागरतें कछु अधिकहें ॥ लांतव स्वर्ग कापिष्ट स्वर्ग के देव का आयु चतुर्दश सागरतें कछु अधिक हैं शुक्र स्वर्ग महाशुक्र स्वर्ग के देव का आयु षोडस सागर ते कछु अधिक हैं ॥ शतास्वर्ग सहस्रार स्वर्ग के देव का आयु अष्टादशसागरतें कछु अधिक हैं आणतस्वर्ग प्राणतस्वर्ग

देवकी आयु वीससागरतैं कछुअधिकहे ॥ आरणस्वर्ग अच्युतस्वर्ग देवकाआयु वावीससागरतेंकछुअधिक हे ॥

आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेननवसुग्रैवेयकेषुविजयादिषुसर्वार्थसिद्धौच ३२

अर्थ ॥ सोलास्वर्ग ऊपर ९ ग्रैवेयकहें तहांके देवकाआयु एकएकग्रैवेयकमे एकएकसागरवधतांआयुहे ॥ २३ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । नवमाग्रैवेयकके देवकाआयु इकतीससागरकाहे ॥ नवअनुदिशविमानमें देवकाआयु बत्तीससागरकाहें ॥ अर विजय वैजयंत जयंत अपराजित ये चारविमानमें देवका आयु तेतीस सागरकाहे अर सर्वार्थसिद्धिविषें उत्कृष्ट आयु तेतीससागरकाहे, सर्वार्थसिद्धिमें जघन्यआयु नहीं हे ॥

परापल्योपममधिकं ३३

अर्थ ॥ सौधर्मस्वर्ग अर ईशान स्वर्ग के देवका जघन्य आयु एक पल्यतै कछु अधिक हे ॥

परतःपरतःपूर्वापूर्वानन्तराः ३४ ॥

अर्थ ॥ सौधर्म ईशान ये दोय स्वर्गमे जो उत्कृष्ट आयु है सो आगे युगल (दो) स्वर्ग में जघन्य आयु है ॥ ऐसेंही आगे आगे जानना ॥

नारकाणांचद्वितीयादिषु २५ ॥

अर्थ ॥ नारकीकै पहले नरकमे जो उत्कृष्ट आयुहै तितना दूसरे नरकमें जघन्य आयु है ॥ दूसरे नरकमें उत्कृष्ट सो तीसरानरकमें जघन्य ॥ ऐसेंजानना ॥

दशवर्षसहस्राणिप्रथमायां २६

अर्थ ॥ प्रथम नरक विषे जघन्यआयु दशहजार वर्षका है ॥

भवानेषुच २७

अर्थ ॥ भवनवासी देवका जघन्य आयु दशहजार वर्षका हे ॥

व्यन्तराणांच २८

अर्थ ॥ व्यंतर देवका जघन्यआयु दशहजार वर्षका हे ॥

परापल्योपममधिकं २९

अर्थ ॥ व्यन्तरदेवका उत्कृष्ट आयु एकपल्यतै अधिक हे ॥

ज्योतिष्काणांच ४०

अर्थ ॥ ज्योतिषदेवका उत्कृष्ट आयु एकपल्यतै अधिक हे ॥

तदष्टभागोपरा ४१

अर्थ ॥ जोतिषदेवका जघन्य आयु, एकपल्यका अष्टमभाग हे ॥

इतितत्वार्थाधिगमेमोक्षशास्त्रेचतुर्थोऽध्यायः ४ ॥

॥ पंचमोऽध्यायः ॥

अजीवकायाधर्माधर्माकाशपुद्गलाः १

अर्थ ॥ धर्मद्रव्य १ अधर्मद्रव्य १ आकाशद्रव्य १ पुद्गलद्रव्य १ ये च्यार द्रव्य चेतनारहित हें तातें अजीव हें अर बहुप्रदेशी हे ताते काय हें ॥

द्रव्याणि २

अर्थ ॥ ये कहे जे धर्म अधर्म आकाश काल इनके द्रव्यसंज्ञा हे जे अपने गुण अर पर्यायरूप समयसमय परिणमै ते द्रव्य हे ॥

जीवाश्च ३

अर्थ ॥ जीव भी द्रव्य है ॥

नित्यावस्थितान्यरूपाणि ४ ॥

अर्थ ॥ जीव, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, ये पांचद्रव्य नित्य कहिये अविनासी हैं ॥ अर अवस्थित कहिये अपने द्रव्यस्वभावकों छोडे नहीं ॥ अर अरूपी कहिये अमूर्तीकहे ॥

रूपिणः पुद्गलाः ५ ॥

अर्थ ॥ षट्द्रव्यमै पुद्गल द्रव्यरूपी है दीखे है दीखैहे और द्रव्य अरूपीहे ॥

आकाशादेकद्रव्याणि ६ ॥

अर्थ ॥ धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य अर आकाशद्रव्य ये तीनू द्रव्य एकएकही हैं बहुत नहीं हैं ॥

निःक्रियाणिच ७ ॥

अर्थ ॥ धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य आकाशद्रव्य ये तीनूद्रव्य निःक्रिय हैं अपने स्थानतै कदाचित् चलायमान नही होय ७ ॥

असंख्येयाःप्रदेशाःधर्माधर्मैकजीवानां ८ ॥

अर्थ ॥ धर्मद्रव्य के अर अधर्म द्रव्य के एकजीव द्रव्य के बराबर असंख्यात प्रदेश हैं ॥

आकाशस्यानन्ताः ९

अर्थ ॥ आकाशद्रव्यके अनन्तप्रदेश हैं ॥

संख्येयासंख्येयाश्चपुद्गलानां ॥ १० ॥

अर्थ ॥ पुद्गलद्रव्य के प्रदेश संख्यात हैं असंख्यातभीहैं अर च शब्दकरि अनन्त प्रदेशभी हैं ॥

नाणोः ॥ ११ ॥

अर्थ ॥ परमाणू (अणू) कै बहुत प्रदेश नहीं येक प्रदेशही है ॥

लोकाकाशेवगाहः २१ ॥

अर्थ ॥ ये कहे जे धर्म अधर्मादिक द्रव्यते लोकाकाशमेंहें लोकाकाशके बाहेर नहीं है ॥ अलोकाकाशमै एक आकाश द्रव्यही है ॥

धर्माधर्मयोःकृत्स्ने १३ ॥

अर्थ ॥ धर्म द्रव्य अर अधर्म द्रव्य इनका अवगाह समस्तलोकमै है जैसे तिल विषै तेल सर्व व्याप्त है तैसें लोकाकाशकें समस्त क्षेत्रमै धर्म द्रव्य अधर्म द्रव्य तिष्ठै है ॥

एकप्रदेशादिषुभाज्यःपुद्गलानां १४ ॥

अर्थ ॥ पुद्गल द्रव्य का अवगाह लोकाकाशके एक प्रदेशतै लगाय असंख्यात प्रदेशतांई अनेक प्रकार है ॥

असंख्येयभागादिषुजीवानां १५ ॥

अर्थ ॥ लोकका असंख्यातवा भागमें जीवका अवगाहहै ॥

प्रदेशसंहारविसर्प्पाभ्यांप्रदीपवत् १६ ॥

अर्थ ॥ जीवके प्रदेश लोकके प्रदेश समानहैं तोहू संकोच विस्तार स्वभाव करि दीपक की नाईं हैं। जैसा शरीर होय तैसा अवगाहकरि तिष्ठे हैं छोटे शरीर मै तथा बड़े शरीरमें तिष्ठता है तोहूं लोक प्रमाण प्रदेशहैं तेघटैनहीं बढैनहीं ॥

गतिस्थित्युपग्रहौधर्माधर्मयोरुपकारः १७ ॥

अर्थ ॥ गति कहिये गमन अर स्थित कहिये तिष्ठना ये दोय उपकारजीव अर पुद्गल द्रव्यको है सो धर्मद्रव्य अर अधर्मद्रव्यकाहै ॥ जीवद्रव्य अर पुद्गल द्रव्य एक क्षेत्रतै अन्य क्षेत्रमै गमनकरे तहां वाह्यसहकारी कारण धर्मद्रव्यहे ॥ अर स्थितिकरते वाह्यसहकारी कारण अधर्म द्रव्यहे ॥

आकाशस्यावगाहः १८ ॥

अर्थ ॥ सर्व द्रव्यको अवगाह देना यो आकाशद्रव्यका उपकारहैं ॥

शरीरवाङ्मनःप्राणापानाःपुद्गलानां १९ ॥

अर्थ ॥ शरीर बचन मनप्राण कहिये उश्वास अपान कहिये निःस्वास ये पुद्गल द्रव्य कृत जीवके उपकारहैं ॥

सुखदुःखजीवितमरणोपग्रहाश्च २० ॥

अर्थ ॥ सुखदुःख जीवनमरण ये भी उपकार पुद्गलकेकिये जीवकोहोयहैं ॥

परस्परोपग्रहोजीवानां २१ ॥

अर्थ ॥ जीव जीवको परस्पभी उपकारकरै है ॥

वर्तनापरिणामक्रियापरत्वापरत्वेचकालस्य २२ ॥

अर्थ ॥ समस्तद्रव्य अपने पर्यायकी रचनाको अपना स्वभावसेही वर्तना है तिस बर्तमानको बाह्यनिमित कालद्रव्यहै ॥ द्रव्य अपने एक एक पर्यायको छोडि अन्य पर्यायको प्राप्तहोना सोपरिणामहै ॥ जैसेजीवको क्रोधादि परिणाम, पुद्गलके वर्णआदिकगुण धर्म अधर्म के स्थित गमणगुण, अर आकाश के अगुरु लघुगुण, इनकी हानिवृद्धिरूप होना सो परिणाम है ॥ बहुरि एकक्षेत्र तै अन्यक्षत्रमें चलने रूप क्रिया सो परके प्रयोगेत हू होय है अर अपने स्वभावतैहू होय है ॥ जैसें मेघ पटलादिक क्रिया को कालका उपकारहैं, बहुत काल जामैं लगै सो परत्व अर अलपकाल जामै लगै सो समस्तकाल द्रव्यका उपकार है ॥

स्पर्शरसगंधवर्णवंतःपुद्गलाः २३

अर्थ ॥ स्पर्श १ रस १ गन्ध १ वर्ण १ येच्यारगुण पुद्गलद्रव्य के हैं, स्पर्श

रस गन्ध वर्ण ये च्यारगुण ज्याकै होय सो पुद्गल हैं ॥

शब्दबंधसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमच्छायातपोद्योतवंतश्च २४

अर्थ ॥ शब्दबन्ध सूक्ष्मपणा स्थूलपणाथू संस्थानभेद अंधकार छाया आताप उद्योत इनि अष्टपर्यायकरि सहित पुद्गलद्रव्य हैं, ये शब्दबन्धादिक समस्त पुद्गलके पर्याय हैं ॥

अणवस्कन्धाश्च २५

अर्थ ॥ अणु अर स्कन्ध येही पुद्गलद्रव्य के पर्याय हैं ॥

भेदसंघातेभ्यःउत्पद्यंते २६

अर्थ ॥ पुद्गल के स्कन्द संघाततै उपजें हैं, बाह्य अभ्यन्तर निमित्त तै स्कंद विदारेजाय सो भेद है अर जे भिन्नभिन्नथे तिनका येक होना सो संघात है ॥

भेदाणुः २७

अर्थ ॥ परमाणु है ते भेदहीते होय हैं संघात तै नहीं होय ॥

भेदसंघाताभ्यांचाक्षुषः २८

अर्थ ॥ स्कंध हते अनन्तानन्त परमाणू के समुदायते होय हैं ॥ तिनमें केइस्कंध नेत्रतै ग्रहणमे आवै है ते चाक्षुष हैं अर केतेकस्कंध नेत्रतै ग्रहणमै नहीं आवै ते अचक्षुष हैं ॥ परंतु केतेकस्कन्ध, सूक्ष्म परिणामतै नही हैं, तथापि उनका भेद होय अन्य स्कंधतै मिलने ते नेत्रगोचर होय हैं ॥

सद्द्रव्यलक्षणं २९

अर्थ ॥ द्रव्यका लक्षण सत् है जो सत्रूप है सो द्रव्य है ॥

उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तंसत् ३०

अर्थ ॥ अपने जातीको नही छोडते, जे चेतन अर अचेतन द्रव्यके निमित्त तै, एकपरणाति छोड़ि, अन्य परिणातीको प्राप्तहोना सो उत्पाद है ॥ अर पूर्व परणातीका अभाव होना सो व्यय है नाशहै ॥ अर पूर्व परणातीका नाश अर उत्तर परणातीका ग्रहण होतेहू अपने जातीको नहीं छोडना सो ध्रौव्य है उदाहरण जैसें मट्टी के पिंडका घट करना सो उत्पाद है ॥ अर पिंडपर्यायका अभाव सो व्यय है ॥ अर पिंड पर्याय मैं तथा घट पर्याय में माटीका अभाव नहीं होना सो ध्रौ-

व्यहै ॥ उत्पाद १ व्यय १ ध्रौव्य १ ऐसें तीन परणती जामैं हौंय सो सत् कहा
वे है अर सत् है सो द्रव्य है ॥

तद्भवाव्ययंनित्यं ३१

अर्थ ॥ जो पहले समयमें होय सोही दूजे समयहोय ताको तद्भाव कहिये ॥
तद्भावका नाश नहीं होना सोही नित्य है ॥

अर्पितानार्पितासिद्धेः ३२

अर्थ ॥ जाको मुख्य करिये सो अर्पित है ॥ जाको गौनकरिये सो अनर्पित
है ॥ सो ये दोऊ नयकरि अनेक गुणरूपी वस्तुका कहना सिद्ध होय हैं ॥ अ-
नेक गुणात्मक वस्तु कहने मैं एकांतीको विरोधादि अष्ट दूषण आवै हैं सो अष्ट
दूषण दिखावे हैं ॥

१ एकबस्तुमैं सत् असत् दोऊ विरोधीधर्म (गुण) कहनेतैं विरोधदूषणलगेगा.
१ एकबस्तुमै सत्असत् दोऊकाएकआधारकैसेंहोय तांते वे अधिकरणदूषणहै.
१ सत्, असत्,के आश्रय कहिये तो, पहले असत होय तब सत के आश्रय

रहना बने अर असत् को सत् के आश्रय कहिये तो, पहलै सत्नाही ऐसें दोऊका अभाव रूप परस्पराश्रय दूषण है.

० सत् काहेकरिहै, तहांकहे असत्करिहै, फेरकहे असत् काहेकरिहै तहांकहे सत्करिहै ऐसें कहूंहूं ठरना नाहीं होय तातै अनवस्था दूषणहै.

१ सत्मैंअसत्मिलै असत्मैंसत्मिलै तहां व्यतिकरणदूषण है.

१ सत्तै असत्होजाय अर असत्तै सत्होजाय तहां शंकरण दूषण हैं.

१ सत्की प्रतिपत्तिहै तहां असत्की प्रतिपत्तिनाहीं अर असत्की प्रतिपत्ति है तहां सत्की प्रतिपत्तिनाही ऐसें अप्रति पत्ति दूषण है.

१ सत्होयतहांअसत्काअभाव अरअसत्होता सत्काअभाव येअभावदूषणहै.

ये अष्टदूषण अनेकांतकै नहीं आवै हैं ॥ सो अनेकांत नयके अर्पित अनर्पित पणातैंही सिद्धिहोय है ॥ सत्असत् एक अनेक नित्य अनित्य भेद अभेद तत् अतत् इत्यादि अनेक धर्मात्मक (गुणात्मक) वस्तु कहनेमें एकांती के विरोधादि अष्ट दूषण दिखाये सो जानलेना

स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्धः ॥ ३३ ॥

अर्थ ॥ पुद्गलपरमाणूकै सचिक्कणपणातै तथा रूखापणातै परस्पर बन्धहोय है ॥ पुद्गलपरमाणूमै सचिक्कण तथा लूखापणा सदावर्तै है ॥ किसी परमाणूमै सचिक्कनपणाका एक अविभागपरिच्छेद है, किसीमैदोय किसीमैतीन च्यार संख्यात असंख्यात अनन्तताईं अविभाग परिच्छेद है ॥ अर समय समय षट्गुणी हानी वृद्धीरूप सचिक्कणगुण तथा रूक्षगुण निरन्तर घटै वधै हैं ऐसे सचिक्कण परमाणूका रूक्षहोय है अर रूक्षपरमाणूका सचिक्कणहोयहै ॥ ये रूक्षपणा कै तथा सचिक्कणताकै अविभागपरिच्छेदके निमितते, एक परमाणु तथाद्व्यणूकादि स्कन्ध कै परस्पर बन्धहोय हैं ॥

नजघन्यगुणानां ॥ ३४ ॥

अर्थ ॥ जघन्य गुणके धारक परमाणूहै तिनकै बन्धनहीं होय ॥ जिसपरमाणू मैं रूक्षपणाका वा सचिक्कणका एक अविभाग परिच्छेद रहिजाय सो बंधको प्राप्त नहीं होय है ॥ जो एक गुण स्निग्धहोय तिसपरमाणूको एक गुण स्निग्ध

परमाणूतै तथा दोय गुण स्निग्धतै तथा संख्यात असंख्यात अनन्तास्निग्धतै बंध नहीं होयहैं ॥ तैसैंही एकगुणास्निग्धपरमाणूको एकगुणारूक्षपरमाणूतै तथा संख्यात असंख्यात अनंतगुणारूक्ष परमाणूतै बंध नहीं होयहै ॥ ऐसैंही एकगुण रूक्ष परमाणू हू दोयको आदिलेय अनेक रूक्ष परमाणूको तथा स्निग्धगुणके परमाणूसूं नहीं बंधै है ॥

गुणसाम्यसदृशानां ॥ ३५ ॥

अर्थ ॥ गुणातै समान होय तथा सदृस होय तिनकैहू बंध नहीं होय ॥ दोय गुण स्निग्धके धारक परमाणू के अर अन्य दोय गुण धारक परमाणूकै बंध नहीं होय ॥ तथा तीन च्यार पांच संख्यात असंख्यात अनंतगुण जे अविभग परिच्छे समान होय तिनके बंध नहीं होय ॥ तो कौनके बंध होयहै सो सूत्र कहै हैं ॥

द्व्यधिकादिगुणानांतु ॥ ३६ ॥

अर्थ ॥ येक परमाणूमें दोयगुण अधिक होय, एकमै दोयगुण घटती होय, तिनकै बंध होय है ॥ दोयगुण सच्चिकणका अर च्यारगुण स्निग्धताका वा रू-

ऐसेंही तीनगुण स्निग्धके वा रूक्ष के, पांच क्षताका होय सो बंधने प्राप्तहोय है ॥ स्निग्ध पर- गुण स्निग्ध वा रूक्षतै बंधहोय ॥ और किसीहीसूं बंध नहीं होय ॥ अर रूक्ष पर माणूके अन्य स्निग्ध परमाणूतै बंध होय है वा रूक्षतै भी होय ॥ परंतु जामै दोय गुण माणूकै अन्य रूक्षपरमाणूतै तथा स्निग्धपरमाणूतै बंधहोय ॥ अन्य हीन अधिक परमाणूतै बंध नहीं होय ॥ अधिक होय तासूं बंध होय ॥ इससूत्रमै जो आदि अर एकगुण जामै रहिगयाहोय सो बंधनै प्राप्त नहीं है ॥ द्व्यधिक प्र- शब्द कह्या है सो प्रकार अर्थ मै जानना तांतै ऐसाभाव जानना, कारतै बंधहोय है ॥

बंधेधिकौपारिणामिकौच ॥ ३७ ॥

अर्थ ॥ पुद्गलनिको परस्पर बंधहोतै, जिस परमाणूमै अधिक गुणहोय सो हीन गुणवाले परमाणूको आपरूप परणामन करावै हैं ॥ एकमै दोयगुण स्निग्ध ता के होय अर दुजीमै च्यारगुण रूक्षपणाके होय तो दोऊ मिलै तदि अधिक गुणरूप जो रूक्षपरमाणू तिसरूप होय हैं ॥ ऐसेंही रूक्षतै स्निग्धमिलै तौ अर

रूक्षसेरूक्षमिलै वा स्निग्धतौस्निग्धमिलै वा स्निग्धतैरूक्षमिलै तौ अधिकगुण जिस परमाणू मे होय तिसरूप हीनगुणरूप परमाणू परिणामि जाय हैं ॥

गुणपर्ययवद्द्रव्यं ॥ ३८ ॥

अर्थ ॥ द्रव्य है सो गुणवान् अर पर्यायवान् है ॥ गुणपर्याय विना द्रव्य नहीं द्रव्य अनेक परणतिरूप अनेकपर्यायरूपहोतेहू गुणकाअभाव नहीं होय हैं, तातैं गुणका समुदायही द्रव्य है ॥ अर समय समय जो परिणतिहोय है सोही द्रव्यमे पर्याय है, सो पर्याय रहित किसीकाल मे नही ॥

कालश्च ॥ ३९ ॥

अर्थ ॥ कालभी द्रव्य है गुण पर्यायवान् है ॥

सोनंतसमय: ॥ ४० ॥

अर्थ ॥ काल जो है सो अनंतहै समय जाका ऐसा है ॥

द्रव्याश्रयानिर्गुणागुणाः ॥ ४१ ॥

अर्थ ॥ जिनका द्रव्य को आश्रय अर आप अन्य गुणते रहित ते गुणहै ॥

इस सूत्रमें गुणकालक्षण कह्या॥ गुणहै ते द्रव्यसूं तन्मय है तातें द्रव्य के आश्र यकहा अर गुणमें अन्य गुण नाहीं, तातें निर्गुणकहो ॥

तद्भावः परिणामः ॥ ४२ ॥

अर्थ ॥ द्रव्य जिस स्वरूप तै परिणमै ताको तद्भाव कहिये, तद्भाव है सो परिणाम है ॥

इतितत्वार्थाधिगमेमोक्षशास्त्रेपंचमोऽध्यायः ५ ॥

॥ षष्टमोऽध्यायः ॥

कायवाङ्मनःकर्मयोगः ॥ १ ॥

अर्थ ॥ कायकी वचनकी क्रिया सोयोग है ॥

सआश्रवः ॥ २ ॥

अर्थ ॥ जो मनका वचनका कायका योग सो आश्रव है ॥ उदाहर ॥ जैसें नौकाको छिद्र होय, उसछिद्रमेंसे जलआवै, सोछिद्र जलआवनेका द्वारहैं, तैसेंमन वचन कायका योगे सो कर्मआवनेके द्वार हैं ॥

शुभाःपुन्यस्याशुभःपापस्य ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ शुभयोगतै पुण्यका आश्रवहोय, अशुभयोगते पापका आश्रवहो है अब अशुभयोगके नाम कहैहैं ॥ जीवका घात, अदत्तका ग्रहण (चोरी) मैथुन सेवन, इत्यादिक अशुभकाय योग हैं अर कर्कश कठोर निंद्य असत्य इत्यादिक वचन कहना सो अशुभ वचन योग हैं ॥ परजीवका घात ईर्षा इत्यादि चिंतवन करना सो अशुभ मन योगहैं ॥ अब अशुभ योग कहैहैं ॥ अहिंसादिक पापरहित कायाकी प्रवृत्ती सो शुभकाय योग हैं ॥ हित मित सूत्र के अनुसार स्वरूपका उपकार बचन बोलना सो शुभवचन योग हैं ॥ अर्हन्तादिक पंच परमेष्ठीके गुण का चिंतवन करना, धर्मध्यानादिक करना निज शास्त्र का चिंतवन करना सो शुभ मनयोग है ॥

सकाषायाकषाययोःसांपरायकेर्यापथयोः ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ कषाय सहित जीवकै, संसार का कारण ऐसा सांपरायिक आश्रव होयहै अर कषाय रहित जीवकै ईर्यापथ आश्रव होयहै ॥ तात्पर्य (भावार्थ) क-

षायकरिसहित जीवके जे कर्मके आश्रव आवेंहैं तिनमे ऐसी स्थितिपडेहैं जाकरि दीर्घकाल संसारपरिभ्रमण करिये ॥ कषाय रहित जीवके आश्रव आवै है परन्तु स्थिति नहीं पडे आवै जिसही समय निरजर जायहैं ॥

इन्द्रियकषायाव्रतक्रियापंचचतुःपंचपंचविंशतिसंख्याःपूर्वस्यभेदाः ॥५॥

अर्थ ॥ अब पापाश्रवके कारण कहैंहैं ॥ इन्द्रियपांच कषायच्यार अव्रतपांच क्रिया पच्चीस ये सांपरायिक आश्रवके कारण हैं ॥

तीव्रमन्दज्ञाताज्ञातभावाधिकारणवीर्यविशेषेभ्यःस्तद्विशेषः ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ कषायकी उत्कटताते जो परिणाम होय सो तीव्रभाव हैं ॥ षकायकी मन्दताते जो परिणामहोय सो मन्दभावहैं ॥ मै इस प्राणीको मारूं ऐसें जानिकारिमारनेमै प्रवृतिकरना सो ज्ञात भावहै ॥ विनाजाने प्रमादतै प्रवृत्ति करना सोअज्ञात भावहैं ॥ पुरुषका प्रयोजन जाके आधार होय सो अधिकरण है ॥ द्रव्यकी शक्ती सो वीर्यहे ॥ यातै जीवकै असंख्यात लोकप्रमाण परिणाम

होहै ॥ जैसा जैसा परिणामहोय तैसा तैसा कर्ममै रसपड़ैहै स्थितिपडैहै ॥ सोही आश्रवके भेद जानना ॥

अधिकरणंजीवाजीवाः ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ आश्रवका आधार जीवद्रव्य, अजीवद्रव्य ऐसे दोय भेदहैं ॥

आद्यंसंरम्भसमारंभयोगकृतकारितानुमतकषायविशेषैस्त्रिस्त्रि
स्त्रिश्चतुश्चैकशः ॥ ८ ॥

अर्थ ॥ जीवाधिकरणके १०८ भेदहैं सो कहैहैं ॥ संरम्भ १ समारम्भ १ आरम्भ १ ये तीन अर मन १ वचन १ काय १ ये तीन योग, अर कृत १ कारित १ अनुमोदना १ ये तीन, अर क्रोध १ मान १ माया १ लोभ १ ये च्यार ॥ इनको परस्परगुणीये तब एकसोआठभेद होयहैं ॥

निर्वर्तनानिक्षेपसंयोनिसर्गाद्विचतुर्द्वित्रिभेदाःपरं ॥ ९ ॥

अर्थ ॥ निक्षेप कहिये धरना ॥ निपजाइये सो निर्वर्तना है ॥ मिलावना सो संयोजना है ॥ जो प्रवर्ताइये सो निसर्ग हैं ॥ निक्षेप के चार भेद है सो कहैहैं ॥

अनाभोग निक्षेपाधिकरण १ सहसा निक्षेपाधिकरण १ दुःप्रमृष्ट निक्षेपाधिकरण ॥
अप्रत्युवेक्षित निक्षेपाधिकरण १ ॥ऐसेंनिक्षेपच्यारप्रकारहैं॥ अब इनकाअर्थकहैहैं॥
भयादिकतैं वा अन्यकार्यकै उतावलीतैं, जो शीघ्रतातैं पुस्तक कमण्डलु शरीर
तथा शरीरकामल इत्यादिक उतावलीसोक्षेपिये सोसहसा निक्षेपाधिकरणहै १ उ-
तावली नहीं होताहु, इहांजीव है वा नहीं है ऐसा विचार न करते अर न अवलो
कन करते पुस्तक कमण्डलु शरीरसम्बन्धीमल इत्यादिक पदार्थ निक्षेपणाकरिये
तथा बस्तुजहांधरनाचाहिये तहांनहींधरना जैसैतैंसे अनेकजागाधरदेना सोअना
भोगनिक्षेपाधिकरणाहैं ॥ २ ॥ बहुरि जो दुष्टतातैं वा यत्नाचाररहिततै जोउपक-
रण शरीरादिक क्षेपणा सो दुःप्रमृष्ट निक्षेपाधिकरणहै ॥ ३ ॥ बहुरिजोविनादेख्या,
बस्तुका निक्षेपण करना स्थापन करना सो अप्रत्यवेक्षित निक्षेपाधिकरणहै ॥ ४ ॥
ऐसैंच्यार प्रकार निक्षेपकह्या ॥ अब दोय प्रकार निर्वर्तना कहैहैं ॥ निपजाईये सो
निर्वर्तना है ॥ शरीरतैं कुचेष्टा उपजावना सो देहदुःप्रयक्तनाम निर्वर्तनाहैं ॥ १ ॥
हिंसाके उपकरण अर शस्त्रादिककी रचना सो उपकरण निर्वर्तना है ॥ २ ॥ तथा

एक मूलगुण निर्वर्तना एक उत्तर गुण निर्वर्तना ऐसैंही दोय भेद हैं ॥ पंचप्रकार शरीर वचन मन उच्छ्वास निश्वास इसका निपजावना सोमूलगुणनिर्वर्तना ॥ अर काष्ट पाथर चित्रामादि निपजावना सो उत्तरगुण निर्वर्तना हैं बहुरिसंयोजना कहै हैं सो संयोजना दोयप्रकार हैं ॥ शीत स्पर्शरूप जोपुस्तक कमण्डलु तथा शरीरादिक तिनको तावडातै तप्तजोपीछिका, ताकरिपूछना सोधना सो उपकरण संयोजना है ॥ १ ॥ बहुरिपान जोजलादिक तिनका अन्यपानमै मिलावना तथाभोजनमै मिलावना तथा भोजनको पानमै मिलावना तथा अन्यभोजनमै मिलावना सो भुक्त पान संयोजना है ॥ २ ॥ अब निसर्गाधिकरण तीनप्रकारहै सो कहैहैं ॥ दुष्ट प्रकार कायाका प्रवर्तन करना सो कायनिसर्गाधिकरण है ॥ १ ॥ दुष्ट प्रकारवचन का प्रवर्तनकरना सो वाक्निसर्गाधिकरणहै ॥ २ ॥ दुष्टप्रकार मनकाप्रवर्तनकरना सो मनोनिसर्गाधिकरणहै ॥ ३ ॥ भावार्थ जीवअजीव दोऊद्रव्यके आश्रयतै कर्म का आगमनहोयहै तिनभावकै विशेषणकहैहैं ॥

तत्प्रदोषनिन्हवमात्सर्यांतरायासादनोपघाताज्ञानदर्शनावर्णयोः ॥ १० ॥

अर्थ ॥ कोऊ पुरुष मोक्षका कारण ऐसा तत्वज्ञान की कथनी करताहोय ता को सुनिकरि ईर्षाभावतै प्रसंसा नहीकरै मौनराखै ताको प्रदोष कहिये ॥ बहुरि आपको जाका ज्ञानहोय अर जाननेकेअर्थि वाकूं कोऊपूछै इसवस्तुका स्वरूप कैसाहै तदि आपनटजाय, जो मैंतौ नहीजानूं ताको निन्हव कहिये ॥ बहुरि आपको शास्त्रकाज्ञानहोय अर शिखावने योग्यभीहोय तोहू पैलेको शिखावैना ही जो शीखजायतो मेरीवराबरीकरैगा ऐसा अभिप्रायको मात्सर्यकहिये ॥ बहु-रि कोऊ ज्ञानाभ्यासकरताहोय तिसमेविघ्नकरदे, पुस्तक तथा पढावनेवालाका तथा स्थानकका वियोगकरदे सो अन्तराय है ॥ बहुरि परनै प्रकाशकिया ज्ञा-नको वर्जना सो असादना है ॥ बहुरि प्रशस्तज्ञानको दूषणलगावना सो उप घात है सो ये प्रदोष १ निन्हव १ मात्सर्य १ अंतराय १ असादना १ उपघा त १ ये दोषतै ज्ञानावरण अर दर्शनावरण इन कर्मके आश्रवहोयहै ॥ औरहू कहैहैं ॥ आचार्य उपाध्यायतै द्वेष अर अकालमेअध्ययन श्रद्धानकाअभाव वि-द्याकेअभ्यासमैंआलस्य तथा अनादर तै सूत्रकेअर्थकाश्रवण धर्मतीर्थकालोप

बहु श्रुति पणाकावर्ग तथा मिथ्या उपदेश देना तथा बहुश्रुतिनिका अपमानक-रना असत्य प्रलाप उत्सूत्रवाद खोटेशास्त्रकाबेचना खोटेशास्त्ररचने हिंसादिकमै प्रवर्तना इत्यादिसमस्त ज्ञानावरण कर्मके आश्रवको कारणहैं बहुरिपरके देखने मै मात्सर्य तथा अन्तराय तथा नेत्रकाउत्पाटन दृष्टिका गर्व बहुत निद्रा दिवस मै शयन आलस्य नास्तिक्यताका ग्रहण, सम्यक्दृष्टिकौ दूखणलगावना, कुतीर्थ की प्रशंसा प्राणी की घात परजनकी निन्दा इत्यादिकी दर्शनावरणकर्म के आ-श्रवको कारण है ॥

दुःखशोकतापाक्रंदनवधपरदेवनान्यात्मपरोभयस्थानान्य सद्वेद्यस्य ॥ ११ ॥

अर्थ ॥ पीडारूप परिणाम सो दुःखहै ॥ अपने उपकारका वियोगहोते जो परिणामका मलीनपणा तिसमै लीन अभिप्रायरूप होय चिन्ताखेदरूपहोना सो शोक है ॥ बहुरि अपवादके निमित्ततै अन्तःकरणकी कलुखताते तीव्रपश्चात्ताप करना सो ताप है ॥ बहुरिपरतापतै उपज्या अश्रुपात पूर्वक विलापादिरूप प्रगट

रुदन करना सो आक्रन्दन हैं ॥ बहुरिआयुबल इन्द्रियबल प्राणादिकका वियोग
करना सो बध है ॥ बहुरि ऐसाविलापकरै जो श्रवणकरनेवालेके करुणाउपजि
आवै सो परिदेवनहै ॥ सो दुःख, शोक, ताप, आक्रन्दन, बध, परिदेवन, ये
आप करै तथा परकै दुःखादिकरै तथा आपकै अर परकै दोऊकै करै ताकै अ-
सातावेदनीय कर्मके आश्रव आवैहैं ॥ बहुरि अशुभयोग परका अपवाद परकी
चुगली निर्दयता परकै आताप करना अंगोपांगका छेदन भेदन ताडन त्रासन
तर्जन घर्षण इत्यादिक तथा परकी निंदा आपकी प्रसंसा करना तथा संक्लेसप्र-
गटकरना महाआरम्भ महापरिग्रहधारनकरना तथा विश्वासघात वक्रस्वभावता
पापकर्मकरि जीवको निरर्थकदण्डदेना विषपीवना तथा फांसीजाल पिंजर इत्यादि
बनाना जीवको पकडनेको मारनेको यंत्रका उपाय तथा खोटे प्रयोगशास्त्र दान
देना पापते मिलेभाव इत्यादिक असतावेदनीय कर्मके आश्रवके कारण हैं ॥

भूतव्रत्यनुकम्पादानसरागसंयमादियोगःक्षांतिशौचमितिसद्वेद्यस्य॥ १२॥

अर्थ ॥ भूत कहिये सामान्यप्राणी अर व्रती कहिये अहिंसादि पांचव्रतके

धारक इनकै पीडाजानि आपकैंजैसेदुःखआया तैसै परिणामहोना सोभूतव्रतीमै अनुकम्पा है॥ परजीवके उपकारके अर्थि अपनाधनादिकदेना सोदानहैं॥ धर्मानु रागसहित संयम सो सरागसंयमहैं ॥ आदिशब्दतै संयमासंयम अकामनिर्जरा बालतपभी समझलेना ॥ निर्दोष क्रियाविशेषको योग कहिये है ॥ बहुरिक्रोधको अभाव सो क्षांति हैं ॥ अर लोभके प्रकार का त्याग सो सौच है॥ सो भूत ब्रती मै अनुकम्पाकादन देना॥ संयमकाधारना ॥ क्षमाकरना ॥ निर्लोभी रहना॥ इनी तै सातावेदनीकर्म के आश्रवहोयहैं॥ तथा अरिहंतकी पूजाकरनेमै तत्परता बाल वृद्ध तपस्वी इनकै वैयावृत्यकरने मै उद्यमी रहना सरल परिणामधरना विनयादि रूप रहना ॥ येही सातावेदनीयके आश्रवके कारणहैं ॥

केवलिश्रुतसंघधर्मदेवावर्णवादोदर्शनमोहस्य ॥ १३ ॥

अर्थ ॥ केवलीको कवलाहार कहना क्षुधा तृषा रोगादिदोष कहना सो केवली का अवर्णवादहै मांस भक्षणादिकको निर्दोष कहना सोश्रुतका अवर्णवाद है॥ मुनी के संघको अशुचित्वादिरूप कहना सो संघका अवर्णवाद हैं चारनिकायके देव

मांस भक्षण करे मद्यपानकरै ऐसा कहना सो देवावर्णवाद है ॥ धर्मकाफल असु-
शादि होना ऐसा कहना सो धर्मका अवर्णवाद है इनकरि दर्शन मोहिनी कर्मके
आश्रवहोइ हैं ॥

कषायोदयात्तीव्रपरिणामश्चारित्रहोयस्य ॥ १४ ॥

अर्थ ॥ कषाय के उदयते तीव्रपरिमाण होना सो चारित्र मोहनी के आश्रव
के कारण हैं ॥ तथा जगत के उपकार करने मे समर्थ जेशीलव्रत तिनकीनिन्दा
करना आत्मज्ञानी तपस्वीकी निन्दाकरना धर्मका विध्वन्सकरना धर्म के साधन
में अन्तराय करना शीलवानको शीलतै चिगावना देशव्रती महाव्रतीको व्रततै
चलायमान करना मद्य मांस मधुके त्यागिको चित्तमै भ्रम उपजावना चारित्र मै
दूषण लगावना क्लेशरूप लिंग (भेषधरना) क्लेशरूपव्रतधरना आपके अर परके
कषाय उपजावना इत्यादि कषायवेदनीयके आश्रवके कारण हैं ॥ बहुरिउत्कट
हँसना दीन दुःखित अनाथकी हास्यकरना काम कथा कामचेष्टाकरि हास्यकरना
वृथाप्रलापकरना ये परिनाम हास्यवेदनीकर्मके आश्रवकरैहैं ॥ बहुरि परकोईक्रीडा

करै तिसक्रीडामै आपतत्परता अन्यकैक्रीड़ाकी सामग्रीमैउद्यमकरना उचित क्रिया का वर्जनहींकरना, परकैपीड़ाका अभावकरना, द्वेषादिकमै उत्सकपनाका अभाव सो रतिवेदनी कर्म के कारणहैं ॥ अन्य जीवकै अरति प्रगटकरना परके रतिका विनाश करना पापीकी संगती करना खोटी क्रियामे उत्साह करना ए अरति वेदनी कर्मको आश्रव करै हैं ॥ अपने शोकहोय तामे विखादी होय चिंतवन करना परकै दुःख प्रगट करना अन्यको शोकमै देखि आनन्द धरना सो शोकवेदनी कर्म के आश्रवको कारनहैं ॥ बहुरि अपना भयरूप परिनाम करना परकै भय उपजावना निर्द्दयपनाकरि परको त्रासदेना इत्यादिक भय वेदनी के आश्रवको कारण हैं ॥ बहुरि सत्यधर्मको प्राप्तभये, जे च्यारवर्ण के धारक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, तिनके कुलकी क्रिया आचारकी ग्लानि करना, परका अपवाद करना सो जुगुप्सावेदनी के आश्रवके कारणहैं ॥ बहुरि अतिक्रोध के परिणाम अतिमानीपना ईर्षाका व्योहार असत्यवचन अतिमायाचारमै तत्परपणा अति रागभावका करना परस्त्री सेवनकरना परस्त्री का रागभाव तै आदर

करना स्त्रीकैसेभाव आलिंगनादि करना इनि भावतैं स्त्री वेदको आश्रव होय है ॥ अल्पक्रोध कुटिलताका अभाव विषयमैं उत्सुकताका अभाव निर्लोभता स्त्री के सम्बन्धमें अल्पराग अपने स्त्री मे संतोष ईर्षाकाअभाव अर स्नानगंध पुष्पमाल्य आभरणमैं अनादर इत्यादिक पुरुष वेदके आश्रव के कारण हैं ॥ बहुरि चार कषायका प्रबलपना तथा गुह्य इंद्रियका छेदना स्त्री पुरुष के, कामके अंग छोड़ि अन्य अंगमै व्यसनीपना, शीलवन्तको उपसर्ग करना व्रतीको दुःख देना गुणवंतका मथन करना दीक्षा ग्रहणकरनेवालेको दुःख देना परस्त्री के संगमके निमित्त तीव्ररागकरना आचाररहित निराचारिहोना सो नपुंसक वेदके आश्रवके कारणहैं ॥

बह्वारम्भपरिग्रहत्वंनारकस्यायुषः ॥ १५ ॥

अर्थ ॥ बहुत आरम्भ करना परिग्रहमे बहुत ममत्व करना सो नरक आयु के आश्रवके कारणहैं ॥ मिथ्याआचरण अति अभिमान शिलाभेद समान क्रोध तीव्रलोभके परिणाम निर्दयपणा परजीवकै संताप उपजावने के परिणाम परके

घातकरनेके परिणाम परके बन्धन होनेका अभिप्राय प्राणीका घात करनेवाला असत्यवचन परद्रव्य के हरनेमै परिणाम मैथुनमै अतिराग अभक्ष्य भक्षण दृढ वैर साधुकी निंदा तीर्थंकरकी आज्ञाभंग कृष्णलेश्याके परिणाम रौद्रध्यानकरि मरण इत्यादिकहू नरक आयुके आश्रवके कारणहैं ॥

मायातैर्यग्योनस्य ॥ १६ ॥

अर्थ ॥ मायाचारके परिणाम तिर्यंच आयुके आश्रवके कारणहैं ॥ बहुरि मिथ्याधर्मका उपदेश बहुआरम्भ बहुपरिग्रह में परिणाम कपटकूडमै तत्परपना पृथ्वी भेद समान क्रोध शीलरहितपना वचनतै चेष्टातै तीव्रमायाचार करना परके परिणामनीमें भेद उपजावना अतिअनर्थ प्रकट करना वर्ण गंध रस स्पर्श इनका विपरीत करना जाति कुल शीलमै दूषण लगावना विसम्वादमै प्रीतिरखना परके उत्तमगुणका छिपावना विना होते औगुण प्रकट करना नील कपोत लेश्या के परिणाम आर्तध्यानतै मरन करना इत्यादि तिर्यंच आयुके आश्रव के कारणहैं ॥

अल्पारम्भपरिग्रहत्वंमानुषस्य ॥ १७ ॥

अर्थ ॥ अल्पआरम्भ अल्पपरिग्रहमै परिणाम सोमनुष्य आयुकआश्रवके कारण हैं ॥ बहुरि मिथ्यादर्शन सहित बुद्धिविनयवानस्वभाव सरलप्रकृति साचेआचरण मै सुखमानना अपना सुखजनावना अल्पक्रोध व्यवहारमै सरलप्रकृति सन्तोष मै रति प्राणीका घातमै विरक्तता कुकर्म मै निवृत्ति होना समस्तसै मिष्टवचन स्वभावहीतै मधुरता लौकिक व्यवहारमै उदासीनता ईर्षारहितपणा अल्पसंक्लेश पणा देवगुरु अतिथिका दानमै पूजासै अपने द्रव्यते विभाग करना कपोतलेश्या के परिणाम मरणकालमै धर्मध्यानीपणा ये मनुष्यआयुके आश्रवके कारण हैं ॥

स्वभावमार्द्दवंच ॥ १८ ॥

अर्थ ॥ विना सिखाया स्वभावतैही कोमलपणा ये हूं मनुष्य आयुके आश्रव के कारण हैं ॥

निःशीलव्रतत्वंचसर्वेषां ॥ १९ ॥

अर्थ ॥ च शब्दतै अल्पारम्भी अल्पपरिग्रहीपणा शीलरहितपण येसमस्त (च्यारूं) आयुके आश्रवके कारण हैं ॥ प्रश्न ॥ शीलव्रतरहितको देव आयुकाबंध

केसाहोय ॥ प्रश्नकासमाधानरूप उत्तर ॥ भोग भूमीमैं उपजेजीव शीलव्रतरहित है तौभी मन्द कषायके प्रभावते देवकी होय हैं ॥

सरागसंयमासंयमाकामनिर्जराबालतपांसिदैवस्य ॥ २० ॥

अर्थ ॥ सरागसंयम तथा संयमा संयम अकामनिर्जरा बालतप ये देव आयु के आश्रवके कारण हैं ॥ तहां सराग संयम तो महाव्रतीमुनीकाहैं ॥ संयमासंयम देशव्रती श्रावग का हैं ॥ तिनको अल्पवासी देवकीआयुका नियम है बहुरिपरा-धीन हुवा क्षुधा तृषा करि बाधाभोगना तथा बंदिग्रहादेमै ब्रह्मचर्य भूमिशयन मल धारण करना दुर्वचनादिककी आतप सहन करना दीर्घकाल रोग दरिद्र धारण सोआकामनिर्जराहैं, यातैंहूं व्यन्तरादिकमैं तथा मनुष्यमै तिर्यंचमै उपजना होयहै ॥ मिथ्यादृष्टी का तप करना सो बाल तपहै, ते बाल तपकेधारक भवन वासी व्यंतर ज्योतिषी इनमै तथा बारमा स्वर्गपर्यंत उपजैहैं तथा मनुष्य मै तिर्यं-चमैहूं उपजैहै, तथाधर्मात्मापुरुषतै मित्रताका संवंध, धर्मकेस्थान आयतनकी सेवा, सत्यार्थ धर्म का श्रवण धर्मकी महिमाहोई तेंसे प्रवर्तन, प्रोषधोपवासादिक का

करना शीलवानूपणा दयापणा अतिअल्पक्रोधादिक येहूं देवायुके आश्रवके कारण हैं ॥

सम्यक्त्वंच ॥ २१ ॥

अर्थ ॥ सम्यक्त्वं तै कलपवाशी देवहींका आयुका आश्रव होय हैं ॥

योगवक्रताविसंवादनंचाशुभस्यनाम्नः ॥ २२ ॥

अर्थ ॥ मन वचन कायकी कुटिलता अर संवाद करना इनितै अशुभनामकर्म के आश्रवहोयहैं अशुभयोगानिका ऐसा विशेषजानना ॥ मिथ्यादर्शनधरना परकी पूठिपाछै खोटीकहना चित्तका अस्थिरपना ताखडी वाट घाटरखना, खोटीवस्तु आछी में मिलाय बेचना, खोटी साख भरना अंग उपअंग काटना स्पर्श रसगंध वर्ण इनकी विपरीतताकरना अनेक जीवकौ दुःखदेने वालेजंत्र पींजरे बनावना कपटकी अधिकता परनिंदा अपनी प्रसंसा करना झूठबचन बोलना परका द्रव्य ग्रहणकरना महा आरंभ महापरिग्रहका मदकरना उज्वलआभरण वस्त्रवेष का मदकरना रूपका मद करना कठोरवचन निंद्यबचन असत्यप्रलाप क्रोध के

वचन धीठता के बचन कहना सौभाग्य मै उपयोग करना वशीकरण के प्रयोग करना पर जीवनके कोतूहल उपजावना आभरणपेरनेमै आदर अनुराग करना जिन मंदिर के चंदनादि गंध अर पुष्प माल्यदिकका चोरना हास्य करना ईटके पकावनेके प्रयोग दावाग्निके प्रयोगकरना देवकी प्रतिमा का विनाशकरना प्रतिमाके स्थानजे मंदिरा दिकलाका नाश करना मनुष्य वा तिर्यंचके वैठने के रहनेके स्थानको मलमूत्रादिक तै बिगाडना बाग बगीचे वन इनका विनाश करना क्रोध मान माया लोभ इनका तीव्रपणा पाप कर्म ते जीवका करना इत्यादिकतैं अशुभनामकर्म के आश्रव होय हैं ॥

तद्विपरीतंशुभस्य ॥ २३ ॥

अर्थ ॥ मन वचन काय इनकी सरलता अर पूर्वं कहै तासूं उलटे परिनामते शुभ नाम कर्मके आश्रवके कारण हैं तथा धर्मात्मा को देखि हरखको प्राप्त होना संम्यक भावराखना संसारभ्रमनतै भयभीत रहना प्रमाद वर्जना इत्यादि शुभनामकर्मके आश्रवके कारण हैं ॥

दर्शनविशुद्धिर्विनयसंपन्नताशीलव्रतेष्वनतीचारोभीक्ष्णज्ञानोपयोगसं
वेगौशक्तितस्त्यागतपसीसाधुसमाधिर्वैयावृत्यकरणमर्हदाचार्य
बहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिमार्गप्रभानाप्रवचन
वत्सलत्वमितितीर्थंकरत्वस्य ॥ २४ ॥

अर्थ ॥ अब सोला भावनाकेनाम कहैंहैं ॥ दर्शन विशुद्धि १ विनयसंपन्नता १ शील
व्रतेष्वनतीचार १ ज्ञानोपयोग १ संवेग १ शक्तितस्त्याग १ शक्तितस्तप १ साधुसमाधि १
वैयावृत्य १ अर्हंतभक्ति १ आचार्यभक्ति १ प्रवचनभक्ति १ आवश्यकापरिहाणि १
मार्गप्रभावना १ प्रवचनवत्सलत्व १ अव सोलह भावनाके लक्षण कहै हैं ॥ जि-
नेंद्रका उपदेश्या मोक्षमार्गमै रुचि अर निःसंकितादि अष्टअंगकी उज्जलता सो
दर्शन विशुद्ध है ॥ १ ॥ दर्शन ज्ञान चारित्र मै अर इनके धारण करनेवाले मैं
आदर तथा विनय करना सो विनय संपन्नता है ॥ २ ॥ शील जो वीतरागतारूप
अपना स्वभाव अर अहिंसादिक व्रतमै मन वचन कायतै निर्दोषप्रवृत्ति करना
सो शीलव्रतेष्वनतीचार है ॥ ३ ॥ ज्ञानकी भावना पढ़ना पढ़ावना उपदेशकरना

इत्यादि जिनोपदेशश्रुति ज्ञानके अर्थमें निरंतरउपयोग रखना सोअभीच्णज्ञानोपयोग है ॥ ४ ॥ संसारके दुःखनि तै नित्य भयभीत रहना सो संवेग है ॥ ५ ॥ धर्मात्मा पुरुषके उपकारके अर्थि आहार औषधी शास्त्र अभयदान देना, सम्यक् भाव के उपकार के अर्थि आहार औषधि शास्त्र अभय दान सम्यक्भाव तैं भक्तिपूर्वक देना सो शक्तितस्त्याग है ॥ ६ ॥ अपनी शक्तीकूं नछिपावता जिनेंद्र के मार्गके अनुकूल अनशनादिक (उपोषणादिक) तप करना सो शक्तितस्तप है ॥ ७ ॥ मुनीश्वरादिक च्यारसंघके कोऊ कारणतै ब्रत शील तप संयम इनमें विघ्न आवे तिनका विघ्न दूरकरके रक्षाकरना सो साधुसमाधि है ॥ ८ ॥ गुणवंत के दुःख आवतै निर्दोष विधिकरके उनका दुःख दूरकरना टहल करना सो वैयावृत्यहै ॥ ९ ॥ केवली के गुणमै अनुराग (प्रीति) करना सो अर्हतभक्तिहै १०॥ आचार्यादिक के गुणमै प्रीतिकरना सो आचार्यभक्तिहै ॥ ११ ॥ बहुश्रुतिके गुण में प्रीति करना सो बहुश्रुतभक्ति है ॥ १२ ॥ श्रुतज्ञानके गुणमें अनुराग (प्रीति) सो प्रवचन भक्तिहै ॥ १३ ॥ षटआवश्यकका यथाकाल प्रवर्तन करना सो आ-

वश्यका परिहानिहै ॥ १४ ॥ ज्ञानके प्रकाशते तथा महातपकरके जिनपूजाकर
के जिनधर्मका उद्योत करना सो मार्ग प्रभावना है ॥ १५ ॥ धर्म के आयतनमें
धर्मात्मा पुरुषमें प्रीतिकरना सो प्रवचनभक्ति है ॥ १६ ॥ ये षोडश भावना हैं
ते उपमा रहित अचिंत्य विभूतिका कारण प्रभाव जाका त्रैलोक्यमें विजयरूप
तीर्थंकर नाम पुण्यकर्मको आश्रवके कारण हैं ॥

परात्मनिंद्राप्रशंसेसदसद्गुणोच्छादनोद्भावनेचनीचैर्गोत्रस्य॥ २५॥

अर्थ ॥ परके दोष होते वा अनहोते प्रगटकरनेकी इच्छा सो परनिंदा है ॥
अर आप विषै विद्यमान् वा अविद्यमान गुणके प्रगटकरनेकी इच्छा सो आत्म
प्रसंसा हैं ॥ परके सत्यगुणको आच्छादन करना अर अपने झूठे गुणहू प्रगट
करना सो ये परनिंदा आत्मप्रसंसा है सो नीच गोत्रके आश्रवके कारण हैं ॥ त
था जाति कुल बल श्रुत आज्ञा ऐश्वर्य्य रूप तप, इनका मद करना परकी अ
वज्ञा करनी परकी हास्यकरना परके अपवाद करनेका स्वभाव रखना धर्मात्मा पु-
रुष की निंदा करना अपनी उच्चता दिखावना परके यशको बिगाडदेना असत्य

कीर्ति उपजावना सत्यगुरुका तिरस्कार करना गुरुके दोष प्रगट करना गुरूका स्थान बिगाड़ना अपमान करना गुरुको पीड़ा उपजावना अवज्ञा करना गुणको लोपना गुरूको अंजुली नहीं जोड़ना गुरुकी स्तुती नहीं करना गुरूके गुणनहीं प्रकाशना गुरूको आवतै नहीं खड़ाहोना तीर्थंकरादिक की आज्ञाका लोपना ये समस्त नीच गोत्रके आश्रवके कारण हैं ॥

तद्विपर्ययोनीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौचोत्तरस्य ॥ २६ ॥

अर्थ ॥ अपनी निंदा करना परकी प्रसंसा करना परके भले गुणकौ प्रकट करना औगुणको ढाकना गुणवंत विषै विनयतै नम्रीभूत रहना आपमै ज्ञानादिक गुणकी अधिक्यता होतेहूं ज्ञानादि मदको प्राप्त नहीं होना अहंकार नहीं करना ये उच्चगोत्रके आश्रवके कारणहैं ॥ जाति कुलरूप वीर्य ज्ञान ऐश्वर्य्य तप अधिकार इनतै हीनहोय इनसे आपकी उच्चता नहीं चिंतवन करना अन्यजीवकी अवज्ञा नहीं करना, अन्य जीव तै उद्धतपना, छोड़ना, परकी निंदा ग्लानिहास्य अपवादका त्यागकरना, अभिमानरहित रहना, धर्मात्माजनकीपूजा सत्कार करना

देखतैही उठि खडा रहना अंजुलीजोडना नम्रीभूत होना वंदना करना, अवारके औसरमै अन्य पुरुषके ऐसें गुण होना दुर्लभ तैसे गुण आपमै होतेहूं उद्धतपना नहीं करना, अहंकार का अभाव करना जैसैं भस्ममै ढक्या अग्निकीनाईं अपना माहात्म नहीं प्रगट करना, धर्म के कारणमै परम हर्ष करना सो समस्त उच्च गोत्र के आश्रव के कारण हैं ॥

विघ्नकरणमंतरायस्य ॥ २७ ॥

अर्थ ॥ दान देते मै विघ्न करने तै दानान्तरराय कर्मकेआश्रव होयहैं ॥ कोऊ कै लाभ होता होय तिस लाभके कारणको बिगाड़े तातै लाभांतराय कर्मका आश्रवहोय हैं ॥ परकेभोग बिगाडने तै भोगान्तराय कर्मका आश्रवहोयहैं ॥ उपभोग विगाडनेतै उपभोगान्तराय कर्मका आश्रव होय हैं ॥ परकी शक्ति विगाडने तै वीर्यांतराय कर्मका आश्रव होय हैं ॥ कोऊ ज्ञानाभ्यास करताहोय ताका निषेधकरने तै कोऊ जिन धर्म जिनशास्त्र प्रसिद्ध करता होय ताका निषेधकरने तै जीर्णोद्धार करताहोय ताका निषेध करनेसे अंतरायनामाकर्मका आश्रवहोयहैं॥

कोऊकासत्कार होता होय तिसका विनाश करने तै तथा दान लाभ भोग उप-
भोग शक्ती स्नान विलेपन अत्तर सुगन्ध पुष्प माल्यादिक, वस्त्र आभरण शय्या
आसन भक्षणकरने योग्य भक्ष्य भोजनकरनेयोग्यभोज्य पीवने योग्यपेय आ-
स्वादने योग्यलेह इत्यादिकनि मै विघ्न करने तै अन्तराय कर्मका आश्रवहोय
हैं ॥ विभव तथा विभवसमृद्धि देखि मात्सर्य करने तै तथा अपने द्रव्य होतेहू
नहीं खरचने तै द्रव्यकी अति वांछा तै, देवकै चढ़ी बस्तु के ग्रहण करने तै
अंतरायकर्मका आश्रवहोय है ॥ निर्दोष उपकरण के त्यागनेतै परकी शक्ति वि
नासनेतै धर्मका छेद करनेतै सुन्दर आचार के धारक तपस्वी गुरुकाघात करने
तै जिन प्रतिमाकी पूजाके बिगाड़नेतै तथा दीक्षित तथा दरिद्री दीन अनाथ
इनकौ कोऊ वस्त्र पात्र स्थान देते होय तिनके निषेध करनेतै परको बंदि ग्रहमें
रोकनेतै बांधनेतै गुह्य अंग छेदनेतै कर्ण नासिका ओष्ठ काटनेतै जीवकै मारने
तै अन्तरायनामा कर्मके आश्रव होयहैं ॥ जैसे कोऊ मद्यपानी अपनी रुचितै मद
मोह भ्रम करनेवाली मदिरापीय करिकै अर तिसके उदयके वसतै अनेकविकार

को प्राप्तहोय हैं, तथा जैसे रोगी अपथ्य भोजनकरि अनेकवात पित्त कफादि ज-
नित विकारको प्राप्तहोय हैं, तैसें आश्रव विधिकरि ग्रहणकिया अष्टप्रकारकर्म
तथा एकसौअडतालीस तथा असंख्यातलोक प्रमाण कर्म प्रकृतितै उपजे वि-
कारको प्राप्तहोय हैं ॥

इतितत्वार्थाधिगमेमोक्षशास्त्रेषष्ठमोऽध्यायः ॥ ६ ॥

॥ सप्तमोऽध्यायः ॥

हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्योविरतिर्व्रतं ॥ १ ॥

अर्थ ॥ हिंसा १ असत्य २ चोरी ३ अब्रह्म ४ परिग्रह ५ येपांचपापकी वि-
रक्तता सो व्रत हैं ॥

देशसर्वतोणुमहती ॥ २ ॥

अर्थ ॥ ये हिंसादिक पांच पापका एकोदेशी त्याग सो अणुव्रत हैं ॥ अर सर्व-
प्रकार तै त्यागसो महाव्रत हैं ॥

तत्स्थैर्यार्थंभावनाःपंचपंच ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ इन अहिंसादिक पंचव्रतको स्थिरिकरनेके अर्थि एक एक व्रतकी पांच पांच भावना हैं ॥

वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानिपंच ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ वचन गुप्ति १ मनोगुप्ति १ ईर्यासमिति १ आदाननिक्षेपनासमिति १ अलोकित पानभोजन कहिये देखि सोधि भोजन पान करना १ ये अहिंसाव्रत की पांच भावना हैं ॥

क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणंचपंच ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ प्रत्याख्यान कहिये त्याग, क्रोधकात्याग १ लोभकात्याग १ भयका त्याग १ हास्यकात्याग १ ये च्यारका तो त्याग करना अर जिनसूत्रके अनुकूल वचन बोलना १ ये सत्यव्रतकी पांच भावना हैं ॥

शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्यशुद्धिसधर्माविसंवादाःपंच ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ सूनाघर तथा पर्वतकी गुफादिक मैं वसना १ परके छोडेहुवे घर वि-
ममोचितावास हैं तामें वसना १ जिस ठिकानैं आपवैठे तहांपरकोईआवै ताका
वर्जन नहीं करना तथा आपको कोईमनैकरै तहां नहीं वैठना १ आचारांगकी
आज्ञा प्रामाण शुद्धभिक्षाग्रहण करना १ ये स्थान, उपकरण, शिष्य, हमारे ये
तुम्हारे ऐसा विसंवाद नहीं करना १ ये अचौर्यव्रतकी पांच भावना हैं ॥

स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहरांगनिरीक्षणपूर्वरतानुस्मरणवृष्येष्ट
रसस्वशरीरसंस्कारत्यागाः ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ स्त्रीमे प्रीतिभाव करनेवाली कथाके श्रवणका त्याग १ स्त्री के मनोहर
अंग अवलोकन का त्याग १ पूर्वे भोगभोगे तिनके स्मरणकात्याग १ पुष्ट इष्ट रस
रूप भोजनका त्याग १ अपने शरीर का शृंगारादिरूप संस्कारका त्याग १ ऐसैं
ब्रह्मचर्यव्रतकी पांच भावना हैं ॥

मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेषवर्जनानिपंच ॥ ८ ॥

अर्थ ॥ स्पर्शनादिक पंच इन्द्रियके इष्ट विषय मे प्रीती का त्याग, अनिष्ट वि-

षय में द्वेष का त्याग ये पांच भावना परिग्रहत्याग ब्रतकी हैं ॥

हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनं ॥ ९ ॥

अर्थ ॥ हिंसादि पांचपापकरनेमै अपने कल्याणका नाशहै, इसलोक परलोक मै निंद्यपणा है, हिंसाकरनेवाला नित्यही उद्वेग रूप रहै हैं अर निरंतर वैरानुवंध होयहैं अर इसलोकमै वध वंध क्लेशादिकने प्राप्तहोयहैं अर परलोक मैं अशुभगती ने प्राप्तहोय हैं, निंद्यहोय हैं तातैं हिंसातैं विरक्त होय त्याग करना इस जीवका कल्यान है १ तैसेंही असत्यवादी समस्तकै अप्रतीति योग्यहै होयहै, कोऊ प्रतीति नहीं करै है, इसलोकमै जिव्हाच्छेदन सर्वस्वहरणादिकनै प्राप्तहोयहैं जिसतै झूठकहा तिसते बडावैर वँधै है अर परलोकमै निन्द्यगतीकूं प्राप्तहोयहैं ताते असत्य वचनतै विरक्तहोय त्याग करना सोही जीवका कल्याण है ॥ २ ॥ तैसेंही परद्रव्य हरनेवाला चोर, समस्तकै पीडा करनेवाला होयहै इसलोकमै नानाप्रकार घात बन्धन हस्त पाद नाशिका ओष्ठकाछेद सर्वस्वहरनादिकने प्राप्तहोय हैं अर परलोकमें अशुभगति प्राप्तहोयहै अर महानिंद्यहोय है तातै चोरीतै वि-

रक्तहोय त्याग करना सोही श्रेष्ठहै ॥ ३ ॥ तैसेही कुशीलीहू मोहते नष्टकार्यकरै है कार्यअकार्यका विचार रहित निंद्यचेष्टाने प्राप्तहुआ अपना हितकानाशकरैहै अर परकी स्त्रीकाआलिंगनमें रति करनेवाला यहां वेरने प्राप्तहोयहै लिंगछेदन बध बन्धन सर्वस्वहरनादिकनै प्राप्तहोयहै परलोकमें अशुभगतीने प्राप्तहोयहै ता तें अब्रह्मते विरक्तहोना जीवका कल्याणहै ॥ ४ ॥ तैसेंही परिग्रहवान् परिग्रह संचय करनेमें रक्षाकरने में क्षयहोनेमें बहुतदुःखने प्राप्तहोयहै अर जैसें ईन्धन करि अग्निकी तृप्ति नहीं होय तैसें परिग्रहते तृप्ति नाहीं होयहै अर परिग्रहवान् लोभी, कार्य अकार्य योग्य अयोग्य नहीं जानै है अर परलोकमें निंद्यगती ने प्राप्तहोय है अर यो लोभी है ऐसें निंद्यहोयहै तातै परिग्रहते विरक्त होना सो ही कल्याण है, ऐसें व्रती भावना भावै हैं ॥५॥

दुःखमेववा १० ॥

अर्थ ॥ ये हिंसादिक पांचपाप दुःखही हैं इनकौ दुःखरूपही भावना करना ॥

मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थानिचसत्वगुणाधिकक्लिश्य

मानाविनयेषु ११ ॥

अर्थ ॥ परजीवकै दुःख नहीं होनेका अभिलाष ताकूं मैत्री कहिये ॥ मुख की प्रसन्नतादिकतै अंतःकरणमें भक्तिरूप प्रीति होना ताको प्रमोद कहिये ॥ दीन दुःखितजनकै उपकार होनेका परिणाम सो कारुण्य है ॥ रागद्वेष पूर्वक पक्षपातको अभाव ताको माध्यस्थ कहिये ॥ समस्त प्राणीकै मैत्री भावना भावना भावना ॥ सम्यक् ज्ञानादिक करि अधिकहोय तिनगुणवन्तकै प्रमोद भावना भावना ॥ क्लेशरूप प्राणीकै कारुण्य भावना भावना ॥ अविनयी जे तीव्र कषायी व्यसनी पापी इनमैं मध्यस्थभाव रखना ॥

जगत्कायस्वभावौवासंवेगवैराग्यार्थं १२ ॥

अर्थ ॥ यो जगत् अनादि निधनहै, वेत्राशन, झल्लरी, मृदंगके सदृश है, इस अनादि संसार में अनन्तकालतै नानायोनीमें परिभ्रमणकरते जीव अनंते दुःख भोगवै हैं, कोऊ नित्य नहीं है, जीवना जल के वुदवुद समान है, विजुली वत् मेघवत् भोगकी संपदा चंचल है इत्यादि जगत्का स्वभाव चिंतवन करने

ते संसारतै संवेगभाव होय हैं ॥ अर ये काया है, सो अनित्यहै, दुःखका कारणहै, निःसार है, अशुचि है, पोषणकरतेही नष्टहोय है, इत्यादि चिंतवनतै विषयतै देह तै वैराग्य उपजै हैं ॥ यातै व्रतीको संवेग अर वैराग्यके निमित्त जगत्का अर कायाका स्वभाव चिंतवन करना श्रेष्ठ है ॥

प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणंहिंसा ॥ १३ ॥

अर्थ ॥ कषाय सहित आत्माका परिणाम सो प्रमत्तहै, प्रमत्तके योगतै प्राणी के प्राणका वियोग करना सो हिंसा है ॥

असदभिधानमनृतं ॥ १४ ॥

अर्थ ॥ असमीचीन वचनकाकहना सो अनृत है असत्य है ॥

अदत्तादानंस्तेयं ॥ १५ ॥

अर्थ विनादिई वस्तुका ग्रहणकरना सो स्तेय कहिये चोरी हैं ॥

मैथुनमब्रह्म ॥ १६ ॥

अर्थ ॥ मैथुनहै सो अब्रह्म हैं ॥

मूर्छापरिग्रहः ॥ १७ ॥

अर्थ ॥ रागादिक अभ्यन्तर परिग्रहहै अर चेतन अचेतन वस्तुमै ममता सो बाह्यपरिग्रह है ॥

निःशल्योव्रती ॥ १८ ॥

अर्थ ॥ मामासल्य १ मिथ्यासल्य १ निदान शल्य १ ये तीनू शल्य रहित होय सो व्रती है ॥

अगार्यनागारश्च ॥ १९ ॥

अर्थ ॥ व्रती दोय प्रकारके हैं ॥ अगार जो गृह तामें वसनेवाला अगारीव्रती हैं अर ग्रहके त्यागी अनगारी व्रती हैं ॥

अणुव्रतोगारी ॥ २० ॥

अर्थ ॥ अणु कहिये अल्पव्रतीकेधारी गृहस्थी अगारीहै जाकै त्रसहिंसाका त्याग ॥ स्थूल झूठ का त्याग ॥ परधन का त्याग ॥ परकी स्त्री त्याग ॥ परिग्रह का परमाण सो अनुव्रती हैं ॥

दिग्देशानर्थदण्डविरतिसामायिकप्रोपधोपवासोपभोगपरि
भोगपरमाणातिथिसंविभागव्रतसम्पन्नश्च ॥ २१ ॥

अर्थ ॥ यावत् जीव पूर्वादिक दिशामें जावनेका भेजने का वस्तुमगावने का प्रमाण करना सो दिग्विरति व्रत है ॥ १ ॥ अर यावत् जीव जो दिशाका प्रमाण किया तिसमै घटाय कालकी मर्यादारूप त्याग करना सो देशव्रतहै ॥ २ ॥ अर प्रयोजनविना जो पाप के आवनेका कारणते अनर्थदण्ड पांच प्रकार हें ॥ सो कहेंहैं ॥ परजीवकीजीति, हार, वध, वंधन, अंगछेदन, सरवस्वहरणादिक अपने परिणामामै चिंतवन करना सो अपध्यान अनर्थदण्ड हें ॥ अथवा परके दोष ग्रहणकरना परकीलक्ष्मीकी वांछाकरना परकेस्त्रीकारूपादिक अवलोकनकरना परका कलहदेखना इत्यादिकहू अपध्याननामा अनर्थदण्डहें ॥ १ ॥ बहुरिप्राणी को पीड़ा हिंसाका उपदेशकरना सो पापोपदेश अनर्थदण्ड है ॥ २ ॥ प्रयोजन विना वृक्षादिक छेदना भूमिकुट्टन जल सेचनादि निन्द्यकर्म करना सो प्रमाद चरित अनर्थदण्ड हैं ॥ ३ ॥ विष कंटक शस्त्र अग्नि चाबकादिक हिंसाका

उपकरन देना सो हिंसादान नाम अनर्थ दण्ड हैं ॥ ४ ॥ रागादिक बधानेवाली हिंसाको पोषनेवाली दुष्ट कथा श्रवण सो दुःश्रुतनामा अनर्थदण्ड है ॥ ५ ॥ ये पांच प्रकार अनर्थदण्डका त्याग सो अनर्थदण्ड विरतिनामा तीसरा गुण व्रत है ॥ ३ ॥ बहुरिसमस्त द्रव्यमै रागद्वेषछोडि समतारूप होय देशकालकी मर्यादा करकै समस्तसवाद्य योग त्याग, परमात्मा का स्वरूप चिन्तवन करना तथा धर्मध्यान में लीन तथा पंचपरमेष्ठी गुणमें एकाग्रहोय तीन काल मै तिष्टना सो सामायिक शिक्षाव्रतहैं ॥ १ ॥ बहुरि एकमहिनामैं दोयअष्टमी दोयचतुर्दशी ये च्यार पर्वमें स्नान विलेपन भूषन गंधमाल्यादि समस्तत्यागि एकांतमें वा साधुके निकट वा चैत्यालय में वा प्रोषधोपवास के गृहमें समस्त गृहकार्यादि छोडि आहारादिक पंच इंद्रियके विषयको त्यागि पंचपापानका षोडश प्रहरपर्यंत त्यागिकर धर्म ध्यानसहित सोलहप्रहर व्यतीतकरै सो प्रोषधोपवासनामा द्वितीयशिक्षाव्रतहैं ॥ २ ॥ बहुरि जिनमें विषय कषाय सधै अर अनेक प्रकार अनंत जीवका घात होय ऐसैं मदिरा मांस लोणी कंद मूल आदो जमीकंद केवडो केतुकी निंबपुष्पादिक इन का

इंद्रियाकी लोलपता आकांक्षा(इच्छा)
तो जिवेपर्यंत त्यागही करना अर योग्यविषय इंद्रियाकी लोलपता प्रमाण करना
घटावनेके अर्थि अर अभिमान घटामनेनिमित्त भोग उपभोगइनका प्रमाण करना
सो भोगो पभोगनामा तीसराशिक्षाव्रत हैं ॥ ३ ॥ बहुरि आतिथि जे मुनिश्वरादि
क पात्र, तिनको अपने अर परके उपकारकेअर्थि भक्तिपूर्वक योग्यविधितै निर्दोष
आहार औषधिवस्तिका पुस्तक देना तथा उपकरण देना सो आतिथि सांविभाग
नामा चौथाशिक्षाव्रतहैं ॥ ४ ॥ ऐसैं तीनगुण व्रत च्यार शिक्षाव्रत इन कारसंयुक्त
पांच अणुव्रत गृहस्थधारणकैर सो व्रती हैं ॥ २१ ॥

मारणांतिकींसल्लेखनांयोषिता ॥ २२ ॥

अर्थ ॥ व्रतीश्रावक है सो मरण के अवसर में सल्लेखनामै प्रीतिकरै ग्रहण क
रै सल्लेखनानाम कृशकरने का हैं, सो सल्लेखना दोयप्रकार हैं एक कायासल्ले
खना ॥ एककषायल्लेखना ॥ अब कायसल्लेखना कहैहैं ॥ शोककाम निद्रा मन
इंद्रिय आलस्य प्रमाद इनके जीतने को, वात पित्त कफादिक के प्रकोपके अभाव
करनेको, सुखियास्भाव दूरकरने को मार्गतै नहिचिगने को, परिसह सहने को,

उपवास नीरसआहार कंजिका बेला तेला इत्यादि जिनसूत्रके अनुकूल शरीरको कृशकरना सो कायसल्लेखनाहैं अर क्रोध मान माया लोभ तथा रागद्वेषादिक को घटाय परमवीतरागता धरना सो कषाय सल्लेखनाहै ॥ जो शरीर सल्लेखना अर कशाय सल्लेखना तै परमवीतरागतारूपहोय पंचपरमगुरुको स्मरण करना परमात्म भावना भावता देहको त्यागना सो सल्लेखना हैं ॥

शंकाकांक्षाविचिकित्सान्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवासम्यग्दृष्टेरतीचाराः ॥२३॥

अर्थ ॥ जिनभाषित तत्वमें शंकाकरना सो शंका हैं ॥ जिनधर्म सेवनकरि इस लोक परलोक में भोगचाहना सो कांक्षा है ॥ २ ॥ अशुभको देखि मनका मलीनपना करना सो विचिकित्सा हैं ॥ ३ ॥ मिथ्यादृष्टीका ज्ञान चारित्र इनमें मनकरि वचनकरि गुणका विचारना सो अन्यदृष्टि प्रशंसाहैं ॥ ४ ॥ मिथ्यादृष्टीके गुणका वचन तैं प्रकाशकरना सो मिथ्यादृष्टी संस्तव है ॥ ५ ॥ ये पांच अतीचार सम्यक्त के हैं ॥

व्रतशीलेषुपंचपंचयथाक्रमं ॥ २४ ॥

अर्थ ॥ पांचअणुव्रत के अर तीनगुणव्रत के च्यार शिक्षा व्रतके इनसप्तशील के पांच पांच अतीचार हैं सो कहैहैं ॥

वंधवधछेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः ॥ २५ ॥

अर्थ ॥ मनुष्य वा तिर्यंचको शांकल जेवड़ी इत्यादिकतै बांधना वा जुडना पींजरे मै देना सो बंधनामा अतीचार हैं ॥ १ ॥ दण्डवेत चाबूक इत्यादिक तै मनुष्य वा तिर्यंचनीको मारना सो वधनामाअतीचार हैं ॥ १ ॥ कर्ण नाशिका हस्तादिक अंग उपांग इनका छेदना सो छेदनामा अतीचार है ॥ १ ॥ न्याय रूप भारते मनुष्य वा तिर्यंचको अधिभार लादना सो अति भारारोपण अतीचार है ॥ १ ॥ मनुष्य का वा तिर्यंचका खानपानको रोकना तथा अपने स्वाधीन जे मनुष्य वा तिर्यंच तिनको विलम्बतै अन्न पानादिदेना सो अन्नपान निरोधनामा अतीचार है ॥ १ ॥ ऐसैं पांच अतीचार अहिंसाअणुव्रतकेकहे ॥

मिथ्योपदेशरहोभ्याख्यानकूटलेखक्रियान्यासापहारसा कारमंत्रभेदाः ॥ २६ ॥

अर्थ ॥ स्वर्ग मुक्तीकी साधन करनेवाली क्रियाको छोंडके, परजीवको अन्यथा प्रवर्तन करावना सो मिथ्योपदेश नामाअतीचार हें ॥ १ ॥ जो स्त्री पुरुषके एकांत में हुवा आचरणको प्रगट करना सो रहोभ्याख्यान नामाअतीचारहें ॥ १ ॥ अन्य पुरुष तो आपको कह्यानहीं परंतु परकीचेष्टातें जानिकरि ऐसें याने कह्याहै वा ऐसें याने कियाहै ऐसे परकेठगनेकेनिमित्त लिखदेंना सो कूट लेखक्रियाहें ॥१॥ कोऊ पुरुष सुवर्णादिक वस्तु आपको सोंपिगया ताकी गिणती भूलगया पाछें अल्प संख्या करि मांगनेलग्या तादि कहें तुमारा है सो लेजावो ऐसेंवचन का कहना सो न्यासापहार हें ॥ १ ॥ प्रयोजन का प्रकरण, अंगविकार भ्रकुटी क्षेपादिकतें परके अभिप्रायको जानिकरके जो ईर्षाभावतें प्रगटकरना सोसाकार मंत्र भेदनामाअतिचारहें १ ऐसें पांच अतीचार सत्यअणुव्रतके हें ॥

स्तेनप्रयोगस्तदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रमहीनाधिकमानोन्मान
प्रतिरूपकव्यवहाराः ॥ २७ ॥

अर्थ ॥ कोऊ परधन चोरताहोय ताको प्रेरना करना तथा चोरकी अनुमो-

अतीचारहै ॥ १ ॥ चोरकूं आप प्रेरनाहू नही
दना करना सो स्तेनप्रयोगनामा अतीचारहै ॥ १ ॥ चोरकूं आप प्रेरनाहू नही
कर भलाहू नहींजानै परंतु चोरको ल्यायाधन ग्रहणकरै सो तदाहृतादाननामा
अतीचार हैं ॥ १ ॥ उचित न्यायतै छोडि अन्य प्रकारकै देना लेना सोही अति
क्रम है अर राज्यते विरुद्ध जो अति क्रमसो विरुद्धराज्यातिक्रमनामा अतीचार
हैं ॥ १ ॥ बहुरि न्यून तोलकरि तोलदेना अधिक करिलना सो हीनाधिकमानो-
न्माननामा अतीचारहै ॥ १ ॥ कृतृमसुवर्णादिक शुद्धमैंमिलाय ठिगनेरूप व्य-
वहारकरना सो प्रतिरूपक व्यवहारनामा अतीचार है ॥ १ ॥ ऐसैं पांच अतीचार
अचौर्य अणुव्रत के हैं ॥

परविवाहकरणेत्वरिकापरिगृहीतापरिगृहीतागमनानंगक्रीडा
कामतीव्राभिनिवेशाः ॥ २८ ॥

अर्थ ॥ अपने संतान विना, अन्यका विवाह करना सो पर विवाहनामा अ
तीचार हैं ॥ १ ॥ इत्वरिका जो व्यभिचारिणी सो व्यभिचारिणी दोय प्रकारहैं ॥
येक परिग्रहीता कहिये एकभर्तृका अर दूजी अपरिग्रहीता कहिये गणिका इत्या

दिक तिनकै जावना आवना लेना देना सो इत्वरिका गमनहैं ॥ येक इत्वरिका परिग्रहीता गमननामा अतिचारहैं ॥ १ ॥ अर येक इत्वरिका अपरिग्रहीता गमन नामा अतीचारहै ॥ १ ॥ बहुरि कामके अंग छोड़ि अन्य अंगतै कामकीडा करना सो अनंगक्रीडानामा अतीचारहैं ॥ १ ॥ बहुरि कामकी तीव्रताका अभिप्राय सो कामतीव्राभिनिवेशनामा अतीचार हैं ॥ १ ॥ ये पांच अतीचार स्वदारासंतोषव्रत के हैं ॥

क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्यभांडप्रमाणातिक्रमाः २६॥

अर्थ ॥ क्षेत्र वास्तु, हिरण्य सुवर्ण, धनधान्य, दासीदास, कुप्यभांड, इनका जो प्रमाण कियाथा जो हमारे एताही परिग्रह है अन्य नाहीं पछे अतिलोभ के वसतै प्रमाण छोड़ि अधिक करलेना सो परिग्रह त्यागव्रतके पांच अतीचार हैं सो कहैं ॥

ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धिस्मृत्यंतराधानानि ३० ॥

अर्थ ॥ जो दिशाका प्रमाण कियाथा ताका उल्लंघन करना सो अतिक्रमहैं,

तहां पर्वतादिक ऊपर चढि चलना सो ऊर्ध्वातिक्रमनामा अतीचार हैं ॥ १ ॥ कू
पादिकमें उतरना सो अधोतिक्रमनामा अतीचार हैं ॥ १ ॥ गुफा बिलादिक सु-
रंगादिकमें प्रवेश करना सो तिर्यग्नामा अतीचारहैं ॥ १ ॥ लोभका वसतें क्षेत्र
का वधावना सो क्षेत्रवृद्धिनामा अतीचार हैं ॥ १ ॥ प्रमादतें संख्याका भुलाना
सो स्मृत्यंतराधाननाम अतीचार हैं ॥ १ ॥ ये पांच अतीचार दिग्व्रत के हैं ॥

आनयनप्रेष्यप्रयोगशब्दरूपानुपातपुद्गलक्षेपाः ॥ ३१ ॥

अर्थ ॥ आप मर्यादरूपकीया क्षेत्रमें तिष्ठतापुरुष, प्रयोजनका वसतें मर्यादा
बाहरके पुरुषको बुलावना सो आनयननाम अतीचार हैं ॥ १ ॥ मर्यादा बाह्य
क्षेत्रमें, पुरुषको कहे तुम ऐसें करे सो प्रेष्यप्रयोगनामा आतीचारहैं ॥ १ ॥
मर्यादा बाहर के क्षेत्रमें व्यापार करनेवाले पुरुषको शब्द सुनादेना तथा खंखारा
इत्यादिक करना सो शब्दानुपातनामा अतीचार हैं ॥ १ ॥ मर्यादा बाहर व्या
पार में प्रवर्तनेवालेको अपनारूप दिखाना रूपतें समस्या करना सो रूपानुपात
अतीचार है ॥ १ ॥ मर्याद के बाह्यक्षेत्र विषे पाषाण वस्त्रादिक पुद्गल क्षेपणा

सो पुद्गलक्षेपनामा अतीचार है ॥ १ ॥ ये पांच अतीचार देशविरति व्रतकेहैं ॥

कंदर्पकौत्कुच्यमौखर्यासमिक्ष्याधिकरणोपभोगपरिभोगा नर्थक्यानि ॥ ३२ ॥

अर्थ ॥ रागभाव की अधिकताते हास्यसहित नीच वचन बोलना सो कंदर्प्प नामा अतीचार दोष हैं॥ १ ॥ अर हास्यरूप नीच वचन सहित शरीरकी कुचेष्टा करना सो कौत्कुच्यनामा अनर्थदंडहै ॥ १ ॥ धीटपणाते वहुतप्रलाप वकवादकरना सो मौखर्यनामा अतीचार है ॥ १ ॥ विचार रहित प्रयोजनमे अधिकपनाकरि दौड़ना खोदना कूदना चालना सो असमिक्ष्याधिकरणनामा अतीचार है ॥ १ ॥ जितना अर्थकरि अपना भोगउपभोगसधै सो अर्थ, तातै अधिकका संग्रहकरना सो उपभोग परिभोगनर्थक्य नामा अतीचार है ॥ १ ॥ ये पांच अतीचार अनर्थ दण्ड बिरतिनामा व्रतके हैं ॥

योगदुःप्रणिधानानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥ ३३ ॥

अर्थ ॥ मन वचन कायके योग इनतीनूकी खोटी प्रवृतिरूपकरना सो तीन

अतीचार तो ये हैं ॥ ३ ॥ उत्साह रहित अनादरतै सामायिक करना सो अना
दर अतीचार है ॥ १ ॥ अर पाठ करनेका तथा क्रियाका भूलजाना सो स्मृत्यनु
पस्थाननामाअतीचार हैं ॥ १ ॥ ये पांच अतीचार समायिकके हैं ॥

प्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्गादानसंस्तरोपक्रमणानादरस्मृत्य
नुपस्थानानि ॥ ३४ ॥

अर्थ ॥ यहां जीवहै कि नहीं, ऐसैं विना देख्या तथा कोमल उपकरणतै विना
भाड्याभूमि विषै मलादिक शरीरादिक का क्षेपणा ॥ १ ॥ उपकरणादिक बिना
भाड्या ग्रहणकरना ॥ १ ॥ बिना देख्या विछावना ॥ १ ॥ तीन अतीचार तो ये
भये अर क्षुधादि पीडित होय उपवासमैं अनादरपना आवश्यकादि क्रियामैं उ-
त्साह नहीं करना सो अनादर अतीचार हैं ॥ १ ॥ क्रिया आवश्यकादि भूलिजाना
सो स्मृत्यनुपस्थान अतीचार हैं ॥ १ ॥ ये पांच अतीचार प्रोषधोपवास के हैं ॥

सचित्तसंबंधसन्मिश्राभिषवदुःपक्वाहाराः ॥ ३५ ॥

अर्थ ॥ जीव सहित वस्तु हैं सो सचित्तवस्तुहैं सचित्ततैं भिड्यारह्याहोय सो

सचित्तसम्बन्ध हैं, सचित्तसूं मिल्या होय सो सन्मिश्र हैं, इनिविषै प्रमादते सेवन ॥ १ ॥ तथा अती भूखतै सेवन ॥ १ ॥ तथा तीव्र प्रीतितै सेवने मैं प्रवृत्तिकरे ॥ १ ॥ तीन अतीचार तो ये हैं ॥ अर पुष्ट रसका भोजन करना ॥ १ ॥ अर भले प्रकार पक्यानहीं ऐसें आहारादिक का भोजन करना ॥ १ ॥ ये पांच अतीचार भोगोप भोगपरिमाण व्रत के हैं ॥

सचितनिक्षेपापिधानपरव्यपदेशमात्सर्य्यकालातिक्रमाः ॥ ३६ ॥

अर्थ ॥ सचित्त जो कमल पत्रादिक मै धरया हुवा आहार देना सो सचित्त निक्षेपनामा अतीचार है ॥ १ ॥ सचित्ततै ढक्याहुवा भोजन साधुको देना सो सचित पिधान अतीचार है ॥ १ ॥ अन्य पुरुष का दान आपने नाम से देना सो परव्यपदेशनामाअतीचार है ॥ १ ॥ अन्यदातार गुण सहसकै नाहीं तथा आदर रहित देना सो मात्सर्यनाम अतीचार है ॥ १ ॥ कालका विलम्बकरि अकाल मैं देना सो कालातिक्रमनामा अतीचार है ॥ १ ॥ ये पांच अतीचार अतिथि सम्विभाग व्रतके हैं ॥

जीवितमरणाशंसामित्रानुरागसुखानुबंधनिदानानि ॥ ३७ ॥

अर्थ ॥ सल्लेखनाके पांच अतीचार कहे हैं ॥ सन्यास ग्रहणकरके जीवनेकी इच्छा सो जीविताशंसानामा अतीचार है ॥ १ ॥ शीघ्र मरण चाहना सो मरणाशंसा अतीचार है ॥ १ ॥ पूर्वकाल में जिस मित्र सहित क्रीडा करीथी तिसका स्मरण करना सो मित्रानुरागनामा अतीचारहै ॥ १ ॥ पूर्वे अनुभव कियेजे इन्द्रियजनित सुख तिनका वारंवार चिंतवन करना सो सुखानुवंधनामा अतीचार हैं ॥ १ ॥ आगे भोगनकी वांछारूप चिंतवन करना सो निदान बन्धनामा अतीचार है ॥ १ ॥ ऐसें पांच अतीचार सल्लेखना के कहे ॥

अनुग्रहार्थंस्वस्यातिसर्गोदानं ॥ ३८ ॥

अर्थ ॥ अपना अनुग्रह तो पुन्य संचय करना है अर पर जो पात्र तिसकै सम्यग्ग्यानादिककी वृद्धि होना है, ऐसें अपनं अर परके उपकार के अर्थि द्रव्यका त्याग करना सो दान जानना ॥

विधिद्रव्यदातृपात्रविशेषात्तद्विशेषाः ॥ ३९ ॥

अथ ॥ नवप्रकार विधि कहै हैं ॥ पात्र आये तिसको तिष्ठतिष्ठ ऐसें आदर पूर्वक वचन कहना सो प्रतिग्रह है १ उच्चस्थान देना १ चरणको प्रासुक प्रमानीक जलतै धोवना १ प्रासुकद्रव्यतै पूजना १ नमस्कार करना १ मनकी शुद्धता १ वचनकी शुद्धता १ कायकी शुद्धता १ भोजनकी शुद्धता १ ये नवप्रकार भक्तितै देना सो विधि हैं ॥ बहुरि जिसवस्तुतै राग, द्वेष, असंयम, मद, दुःख भय, प्रमाद, रोगादिक नहीं उपजै ऐसी वस्तु तपस्वीको देना अर तपकी स्वाध्यायकी वीतरागताकी वृद्धिकरनेवाली उत्तमवस्तु पात्रदान देने योग्य द्रव्यहैं ॥ अब दातारके सातगुण कहै हैं ॥ दानदेय, इसलोक परलोकमै धन, सम्पदा, यश, कीर्ति इनकी नहीं बांछा करना सो ये निरपेक्षनामा दातारका प्रथमगुणहै १ क्षमा १ कपट रहितता १ आदेशभावका अभाव १ विषाद रहितपणा १ हर्षित पणा १ निर्हंकारीपणा १ ये सप्तगुणदातार के हैं ॥ अब पात्र के तीन भेद कहै हैं ॥ रत्नत्रयके धारक मुनी, उत्कृष्ट पात्र हैं ॥ व्रतसहित श्रावक, मध्यमपात्र हैं ॥ व्रतरहित सम्यक्त सहित अव्रतसम्यक्दृष्टी, जघन्यपात्र हैं ॥ दान देने के

योग्य तीन प्रकार के पात्र हैं ॥ ऐसें दानयोग्य विधि, द्रव्य, दात्र, पात्र, कहैं ॥ इनमें जो नानाप्रकारके विशेषहै तिनके विशेषतै पुण्यमै विशेषहैं ॥ उदाहरण ॥ जैसे पृथ्वी जल पवनादि विशेषतै फल विशेष होय तैसें जानना ॥

इतितत्वार्थाधिगमेमोक्षशास्त्रेसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ॥

मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगाबन्धहेतवः ॥ १ ॥

अर्थ ॥ मिथ्यादर्शन १ अविरति १ प्रमाद १ कषाय १ योग १ ये पांच, बन्धके कारण हैं ॥ तत्वार्थ का अश्रद्धान सोमिथ्यात्व है, मिथ्यात्व भाव पांच प्रकार हैं सो कर्मबन्ध का कारण है ॥ पांच इन्द्रिय का विषय अर छट्ठामन का विषय इनको नाहिं रोकना अर छहकायके जीवकी दया का अभाव ये बाहर अविरत है-, ते अविरत कर्म बन्धके कारण हैं ॥ अर विकथादिक प्रमाद करके स्वरूप का भूलना सो बंध का कारण है ॥ अर क्रोध मान माया लोभ ये चार प्रकार के

कषाय ते बन्धके कारण हैं ॥ अर मन बचन कायके योगते कर्मबन्धकेकारणहैं ॥

सकषायत्वाजीवःकर्मणोयोग्यान्पुद्गलानादत्तेसबन्धः ॥ २ ॥

अर्थ ॥ कषाय सहित पना तै यो जीव कर्म के होने योग्य पुद्गलको ग्रहण करै सो बन्ध है ॥

प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशास्तद्विधयः ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ जीव जो कर्म बन्धको प्राप्त होयहैं सो प्रकृति जो स्वभावताको लिये बंधे हैं, जैसी निम्बकी प्रकृति कड़वी हैं गुड़की प्रकृती मिठी है, तैसाही आठों कर्मके प्रकृती का स्वभाव जूदा जूदा है ॥ ज्ञान आवर्णी कर्म के प्रकृतीकास्वभाव ऐसाहै, पदार्थका जानपना नहीं होनेदे ॥ अर दर्शनावर्णीय कर्म के प्रकृती का स्वभाव ऐसा है, पदार्थ का सामान्यअवलोकन नहीं करने दे ॥ वेदनी कर्मका स्वभाव, सुख रूप दुःखरूप वेदना कराने का है ॥ दर्शन मोहनीकर्मका स्वभाव स्वतत्व का परतत्वका श्रद्धान नहीं होने दे ॥ चारित्र मोहनीयकर्म का स्वभाव संयमरूप नहीं होनेदे ॥ आयु कर्मका स्वभाव भव से स्थिरकरने का है ॥ नामकर्म

का स्वभाव नारकादि का शरीरादिरूप नाम धरानेका है ॥ गोत्र कर्मकी स्वभाव ऊंच नीच स्थानादिक कहावनेकाहै ॥ अन्तरायकर्मका स्वभाव दानादिकमै विघ्न करने का है ॥ बहुरि जो कर्म जितनेकाल अपना कर्म कर्मका स्वभावको नहीं छोडै ताको स्थितिकहिये ॥ उदाहरण ॥ जैसे छेलीगाय, भैसी, इत्यादिकका दुग्ध जितनेकाल अपने मधुर स्वभावको नहीं छोड़े सोही स्थिति है ॥ तैसे ज्ञाना-वर्णादिक अर्थके नहिं जाननेरूप स्वभावतै नहीं छूटै सो स्थिति है॥ बहुरिकर्म मै रस देनेकी शक्ति सो अनुभागहैं, जैसें छेली गाय भैसी इत्यादिकका दुग्ध मे तीव्र मंद जो रस चिक्कणता मिष्टता होहैं तैसें कर्ममें जो तीव्र मंदादिसामर्थ्य सो अनुभागबंध है॥ याहीको अनुभव कहिये है॥ बहुरिकर्मभावरूप परिणये जे पुद्गलस्कन्ध तिनके परमाणूकी जोगिणती सो प्रदेशबन्ध है॥

अद्योज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रांतरायाः॥४॥

अर्थ ॥ आद्य जो प्रकृति बन्ध, सो ज्ञान वरण १ दर्शनावरण १ वेदनीय १ मोहनीय १ आयु १ नाम १ गोत्र १ अन्तराय १ ऐसैं अष्ट भेद रूप हैं॥

पंचनवद्वयष्टाविंशतिचतुर्द्विचत्वारिंशद्द्विपंचभेदायथाक्रमं ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ ज्ञानावरण के पांच भेद हैं ॥ दर्शनावरण के नवभेद है ॥ वेदनीय के दोय भेद हैं ॥ मोहनी कर्मके अठाईस भेद हैं ॥ आयु कर्म के चार भेद हैं ॥ नाम कर्म के तिरानवे भेद हैं ॥ गोत्र कर्म के दोय भेद हैं ॥ अन्तराय कर्म के पांप भेद हैं ॥

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानां ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ अव ज्ञानावरणके पांच भेद कहैं हैं ॥ मतिज्ञानकूं आच्छादन करै सो मतिज्ञानाबरण है ॥ १ ॥ श्रुतज्ञानको आच्छादन करै सो श्रुतज्ञानवरणहै ॥ १ ॥ अवधिज्ञानको आच्छादनकरै सो अवधिज्ञानवरण है ॥ १ ॥ मनःपर्ययज्ञानको आच्छादनकरै सो मन.पर्ययज्ञानावरण है ॥ १ ॥ केवलज्ञानको आच्छादन करै सो केवल ज्ञानावरण है ॥ १ ॥

चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानांनिद्रानिद्रा निद्राप्रचलाप्रचलाप्रचला स्त्यानगृद्धयश्च ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ दर्शनावरणीय कर्मके दो भेद कहें हैं ॥ नेत्र इन्द्रियद्वारे दर्शनकोरोकै सो चक्षुदर्शनावरण है ॥ १ ॥ अन्य चार इन्द्रियद्वारे, रसन स्पर्शन घ्राण करण इनके विषयको रोकै सो अचक्षु दर्शनावरणहै ॥ १ ॥ अवधि दर्शनकोरोकै सो अवधिदर्शनावरणहै ॥ १ ॥ केवल दर्शनको रोकै सो केवल दर्शनावरणहै ॥ १ ॥ मद खेद ग्लानि दूरकरनेको सोवना सो निद्रा है ॥ १ ॥ वहुरि तिस निद्राका ऊपरा ऊपर आवना सो निद्रा निद्रा है ॥ १ ॥ जो शोक श्रम मद ग्लानि इनतैउपजी निद्रा आत्मानै चलायमान करै तथा वैठेहू के नेत्रमै शरीरमै विकार करै सो प्रचला है वहुरि सोई फेर प्रवर्तै सो प्रचला प्रचला है ॥ १ ॥ जिसमै सोवतैहू पराक्रम सामर्थ्य प्रगट होय सूताहि उठि कछुकार्य करै फेर सोवै अर कार्यकीया ध्यानमै नाहिंरहै जो मै कछु किया, ऐसें निद्राको स्त्यानग्रद्धी कही ये सो स्त्यानग्रद्धि दर्शनावरण है ॥ ० ॥ ऐसें नव प्रकार दर्शनाबरणीय प्रकृति जो स्वभाव कह्या ॥

सदसद्वेद्य ॥ ८ ॥

अर्थ ॥ वेदनीय कर्मकी दोय प्रकृती है सो कहैहैं ॥ एक सातावेदनीय एक असाता

वेदनीय ॥ जाका उदय तै देवादिक गतीमै, शरीर, मन, इन सम्बन्धी सुखप्राप्त होय सो सातावेदनीय है ॥ जाके उदयतै नरकादिकमै अनेकप्रकार दुःख अनुभवै सो असातावेदनीय है ॥

दर्शनचारित्रमोहनीयाकषायाकषायवेदनीयाख्यास्त्रिद्विनवषोडशभेदाःसम्यक्त्वमिथ्यात्वतदुभयान्यकषायकषायौहास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुंनपुंसकवेदाःअनंतानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनविकल्पाश्चैकशःक्रोधमानमायालोभाः ॥ ९ ॥

अर्थ ॥ अब मोहनीय कर्मकी अठाईस प्रकृती है सो कहैहैं ॥ दर्शन मोहनीय के तीन प्रकार हैं अर चारित्र मोहनीय पंचवीस प्रकार हैं ॥ च्यारित्रमोहनी मै अकषायवेदनी नवप्रकार हैं, कषायवेदनी सोलह प्रकार है ॥ अब दर्शन मोहनी के तीन प्रकार कहैहै ॥ मिथ्यात्व, सम्यक्‌मिथ्यात्व, सम्यक्‌प्रकृती मिथ्यात्व ॥

तत्वार्थका श्रद्धान नाहीं सो मिथ्यात्व है ॥ १ ॥ तत्वार्थका श्रद्धान अश्रद्धान दोऊ
मिल्याहुआ होय सो सम्यक्मिथ्यात्व है ॥ १ ॥ सम्यक्तको बिगाड़ने समर्थतो नहीं,
परंतु श्रद्धानको मलीनकरै सो सम्यक्प्रकृति मिथ्यात्वहै १ अब कषायके नवप्रकार
कहैहै ॥ जाके उदयतें हास्यप्रगटहोय सो हास्यहै १ जाकेउदयते वस्तुमेंआसक्त
होनासोरति है ॥१॥ जाके उदयते कछूही सुहावै नहीं सो अरतिहै १ जाकेउदयते
इष्टका वियोगादितै परिणाम मै खेदितहुवा शोचकरना सो शोकहै ॥ १ ॥ जाके
उदयते दुःखकारी पदार्थ तै उद्वेगरूप डरना सो भयहै ॥१॥ जाकेउदयते अपना
दोष छिपावना अर परकादोष देखि परिणाम मलीन करना सो जुगुप्सा है ॥ १ ॥
जाके उदयते स्त्रीसम्बन्धीभाव पावना सो स्त्री वेद है ॥ १ ॥ जाकेउदयते पुरुष
सम्बन्धी भाव होना सो पुरुषवेद है ॥ १ ॥ जाकेउदयते नपुंसकसम्बन्धी भाव
पावना सो नपुंसकवेद है ॥ १ ॥ अब चारित्र मोहनी के सोलहप्रकार कहैहैं ॥
जाके उदयते सर्वथा एकांत रूप असत्य तत्वमै प्रीति होय, अनेकान्तरूप सत्य
तत्व तै द्वेषभाव होय, असत्यको सत्यथापि पक्षकरै, अपना असत्यार्थ तत्वको

सत्यार्थ मानने मै अभिमान करै, पर्यायादिकामै ममता करानेवाला, अन्याय मै न्यायरूप प्रतीति करावनेवाला, अपना झूठापदस्थ, कुत्सितआचरण, विपरीत ज्ञान इनमैं सत्यपणाका उच्चपणाका मद करानेवाला, अनंतानुबन्धी है, जातै अनन्त संसारका कारण मिथ्यात्वभाव होय सो अनन्तानुबन्धीहै सो क्रोध, मान, माया, लोभ, ऐसें चार प्रकार हैं ॥ ४ ॥ जाके उदयतें एक देश त्यागरूप (श्रावककेव्रत) किंचित्मात्रभी नहीं करनेदे सो अप्रत्याख्यानावरणी क्रोध मान माया लोभ ये चार कषाय हैं ॥ ४ ॥ बहुरिजाकेउदयते सकलसंयमको नहीं ग्रहण करिसकै सो प्रत्याख्यानावरणी क्रोध मान माया लोभ है ॥ ४ ॥ जाके उदयते संयमभी रहै अर शुद्धस्वभावमै लीननहींहोसकै सो संज्वलनक्रोध मान माया लोभ है ॥ ४ ॥ ऐसें सोलह प्रकार कषाय हैं ३ । ६ । १६ ऐसें अठाई प्रकार मोहनी कर्मकी प्रकृती कहीं ॥

नारकतैर्यग्योनिमानुषदैवानि ॥ १० ॥

अर्थ ॥ आयु कर्मके चार भेद कहेहैं ॥ नरकविषै उपजनेका कारण सो नरक

आयु है ॥ १ ॥ तिर्यंचभवमै उपजनेका कारण तिर्यंच आयुहै ॥ १ ॥ मनुष्य भवमै उपजने का कारण मनुष्य आयु हैं ॥ १ ॥ देव भवमै उपजने का कारण देव आयु हैं ॥

गतिजातिशरीररांगोपांगनिर्माणबंधनसंघातसंस्थानसंहननस्पर्शरस
गंधवर्णानुपूर्वागुरुलघूपघातपरघातातपोद्योतोच्छ्वासविहायोग
तयःप्रत्येकशरीरत्रससुभगसुस्वरशुभसूक्ष्मपर्याप्तिस्थि
रादेययशःकीर्तिसेतराणितीर्थकरत्वंच ॥ ११ ॥

अर्थ ॥ अब तिराणवे प्रकार नाम कर्मकी प्रकृती कहहैं ॥ पिण्डप्रकृति ६५ है और अपिंडप्रकृति २८ हे ॥ अब पिंडप्रकृतीकेनाम कहे हैं ॥ जाके उदयतै आत्मा भवांतरको जाय सो गति है ॥ गति च्यार प्रकार हैं । नरकगति १ तिर्यंचगत १ मनुष्यगति १ देवगति १ बहुरि जिस विषै अव्यभिचार समान भावकारि एकतारूप भया जो अर्थ का स्वरूप सो जाति हैं जाति पांच प्रकार हें एकइंद्रियजाति १ बेइंद्रियजाति १ तीन इंद्रियजाति १ चार इंद्रियजाति १ पांच इं

द्रियजाति १ जाके उदयते आत्मा के शरीर उपजै सो शरीर नाम कर्म है सो शरीर पांच प्रकार हैं। औदारिक शरीर १ वैक्रियक शरीर १ आहारिक शरीर १ तैजसशरीर १ कार्माणशरीर १ जाकै उदैतै अंग उपांग उपजै सो आंगोपांग हैं सो तीन प्रकार हैं। औदारिक आंगोंपांग १ वैक्रियक आंगोपांग १ आहारक आंगोपांग १ जाकै उदयतै नेत्र करणादिक यथास्थान होय सो स्थान कर्म है १ यथाप्रमाण होय सो निर्माणकर्महैं १ जाके उदयते औदारिकादिक शरीर के पुद्गलका परस्पर प्रवेशरूप बंधान होय सो बंधन है। ताके पांच भेद हैं औदारिक बंधन १ वैक्रियवंधन १ आहारकबंधन १ तैजसबंधन १ कार्माणबंधन १ जाकै उदयते औदारिकादि शरीरके पुद्गल परस्पर अनुप्रवेश तै इकसार साफ हो जाय छिद्र रहित मिलिजाय सो संघातनामकर्महैं ॥संघात पांचप्रकारहैं॥ औदारिक संघात १ वैक्रियकसंघात १ आहारकसंघात १ तैजससंघात १ कार्माण संघात १ जाके उदयतै औदारिकादि शरीरके आकृति उपजै सो संस्थाननाम छहप्रकार हैं॥ जो ऊपरिनीचे समान विभागरुप शरीरके अंगउपांगमें आकार

होय सो सुन्दर मर्यादरूप अंग होय सो समचतुर संस्थानहैं १ जिस शरीरकेपुद्गल
ऊपरले वडेहोय नीचेके छोटे(वडकेवृक्षकी ज्यो) होय सो न्यग्रोधपरिमंडल संस्थान
हैं १ जिसके शरीर पुद्गल बांबीकी ज्यो नीचै विस्तार रूप होय ऊपर संकोचरूप
होय सो स्वातिक संस्थान हैं १ जाकी पीठ वीचमें वडीहोय, ऊपर, नीचे हलका
होय सो कुब्जकसंस्थानहैं १ जाकै हस्तपादादिक अंग छोटे होय उदर मस्तक
वडा होय सो वामन संस्थान है जिसशरीरकें समस्त अंग उपांग नीचे ऊंचे घाटि
वादि विडरुप होय सो हुंडकसंस्थान है १ जिसके उदयतें हाड का वंधान में
विशेष होय सो संहनननाम हैं सो छह प्रकार है ॥ जिस शरीर मे संहनन कहिये
हाड अर ऋषभ कहिये नसके वेष्टन अर नाराच कहिये कीले ये वज्रमय होंय सो
वज्र ऋषभनाराच संहनन है ॥ १ ॥ अर जामै हाड अर संधिके कीला तो वज्रमय
होंय अर नशके बन्धन वज्रमय नहीं होय सो वज्रनाराच संहननहै ॥ १ ॥ बहुरि
जाके वज्रविशेषण रहित नाराच कहिये कीली, तिनकरि कीलित हाडकी संधि
होंय सो नाराच संहनन है ॥ १ ॥ बहुरि जामै हाडकीसन्धिमै कीले आधे होय

एक तरफ़ होय, दूजे तरफ़ नहीं होय सो अर्द्धनाराचसंहनन है ॥ १ ॥ बहुरिजामें हाडकी सन्धि, छोटे कीलेकरि सहित होय सो कीलक संहनन है ॥ १ ॥ बहुरि जामें हाडकी संधिमें अन्तरहोय, चौगिरद वड़ी छोटी नस लिपटी होय, मांसादिकतें आच्छादित होय असंप्राप्तासृपाटिक संहननहै ॥ १ ॥ सो ये संहनन मनुष्य अर तिर्यंनि कै होय है॥ देव नारकी एकेन्द्रिय इनके हाड नहीं, तदि संहनन कैसें होय ॥ जिसकें उदयतें शरीरकें स्पर्श उपजे सो स्पर्शनामकर्म आठप्रकार है सो कहैहैं॥ कर्कश १ कोमल १ भार्‍यो १ हलको सचिक्कणा १ रुक्ष १ शीत उष्ण १ तीक्ष्ण, १ कटुक, १ मधुर, १ आम्ल, १ कषाय १ जाके उदयते शरीरमें गन्ध निपजै सो गंध नाम कर्म दोय प्रकार है ॥ सुगन्ध, १ दुर्गन्ध १ जाकेउदयतें शरीरको वर्ण प्रगट होय सो वर्णनाम कर्म पांच प्रकारहै ॥ सो कहैहैं ॥ कृष्ण, १ नील, १ स्वेत, १ रक्त, १ हरित, १ अव आनुपूर्वीनामकर्म चारप्रकार हैं सो कहैहैं ॥ जाके उदतें मरण हुवा पाछे नवीनशरीरके योग्य पुद्गलवर्गना ग्रहणनहींकरे जब तक पूर्वला शरीरका आकार वन्यारहै सो आनुपूर्वनामाकर्म चारप्रकार है॥ नरक

गति अनुपूर्वी १ तिर्यंचगति अनुपूर्वी १ मनुष्यगति अनुपूर्वी १ देवगति अनुपूर्वी
१ इन आनुपूर्वी का उदय तीन समय उत्कृष्ट रहैहैं ॥ जैसें मनुष्य मरणकरि देव-
गती के सन्मुख जाय तदि जबतक देव सम्बन्धी शरीर योग्यपुद्गल नहीं ग्रहण
करै तबतक कर्म सहित आत्माका आकार, पूर्वला मनुष्य शरीर सदृश रहता
देव पर्याय के सन्मुख होयहै, ताको देवगत्यानुपूर्वी कहिये ॥ ऐसै नाम कर्मकी
पिण्डप्रकृति ६५ कही ॥ अब नाम कर्मकी अपिण्डप्रकृति २८ कहैहैं ॥ जाकैउदय
तै लोह पिण्डकी ज्यों भारया होय करि तलै गिरपडै नहीं तथा आकके फूफदाकी
ज्यौ हलकाहोय उडिजायनहीं सो अगुरुलघुनाम कर्म प्रकृती है ॥ १ ॥ यो अगुरु
लघुशरीर सम्बन्धी नाम कर्मको भेद है ॥ अगुरुलघुनामा स्वाभाविक द्रव्य का
स्वभावनाहीं है ॥ जाके उदयते अपने शरीरके अंगकरि अपना शरीरका घात
होय सो स्वघात नाम प्रकृति है ॥ १ ॥ जैसें बड़े श्रृंग, लम्बेस्तन, बड़ाउदर,इनि
तै आपकाही घात होय है ॥ जाके उदयते अपने अंगतै परका घात होय सो
परघात नाम कर्म है ॥ १ ॥ जैसें तीक्ष्णश्रृंग, तीक्ष्णनख, सर्पके डाढ़, विंचू, ये परके

घातक हैं ॥ जाके उदयते आतपमय शरीर पावै सो आतापनाम प्रकृती है ॥१॥ सो सूर्यके विमानके है पृथ्वीकायजीवकेही होयहै ॥ जाके उदयते उद्योतरूप शरीरपावै सो उद्योतनाम कर्म है॥ १ ॥ सो चन्द्रविमानके हैं पृथ्वीकाय जीवके तथा आज्ञाआदि जीवके है ॥ जाकेउदयते उश्वास आवे सोउश्वासनाम कर्म है जाके उदयते आकाश विषै गमन विशेष होय सोविहायोगति है॥ १ ॥ शोभनीक गमन होय सो प्रशस्तविहायोगति है ॥ बुरीरीत गमन सों अप्रशस्तविहायोग तिहै ॥ जाके उदयते एक शरीर एक आत्मातै भोगिये ऐसा शरीर पावै सो प्रत्येक शरीरनाम कर्म है ॥ १ ॥ जाके उदयते बहुत जीवकं भोगनेयोग्य एक शरीर पावै सो साधारण शरीर नाम कर्म है ॥ १ ॥ जाके उदयते द्विइन्द्रयादिक मै जन्महोय सो त्रस नाम कर्म है ॥ १ ॥ जाके उदयते एकेन्द्रियमै उत्पत्तिहोय सो स्थावरनाम है ॥ १ ॥ जाकेउदयते अन्यको प्यारालागै प्रीति उपजावै सो सुभगनाम है॥ १ ॥ जाके उदयते रूपादि सुन्दर गुणहोय तोऊ अन्यके अप्रीति उपजावै सो दुर्भगनामहै॥ १ ॥जाकेउदयते मनोज्ञस्वर होय सो सुस्वरनामहै ॥१॥

जाके उदयते अमनोज्ञ स्वर होय सो दुःस्वरनाम है ॥ १ ॥ जाके उदयते मस्तक मुख हस्त पादादि शरीरके अवयव रमणीक सुन्दर सो शुभनाम है ॥ १ ॥ जाके उदय ते मस्तकादि शरीरके अवयव असुंदर होय सो अशुभनामहै ॥ १ ॥ जाके उदयते पृथ्वी, पहाड़, अग्नि, जल, वस्त्र, पटलादिक मे प्रवेश करते नहीं रुकने वाला सूक्ष्मशरीर उपजै सो सूक्ष्मशरीरनाम है ॥ १ ॥ जाके उदयते अन्यको बाधाकरै रोकै ऐसा शरीर उपजै सो बादर शरीरनाम है ॥ १ ॥ जाके उदयते आहार आदिक छहपर्याप्त पूर्णकरै सो पर्याप्तनाम है ॥ १ ॥ जाके उदयते एकहू पर्याप्त पूर्ण नहीं करै अपर्याप्त अवस्थामै मरणकरै सो अपर्याप्तनामहै ॥१॥ जाके जाके उदयते रसादिक धातु उपधातु अपने अपने स्थानविषै स्थिरभावरूप (आंगोपांग दृढ़) होय सो स्थिनाम है ॥ १ ॥ जाकेउदयते रसादि धातु उपधातु अस्थिर होय सोअस्थिरनाम कर्महै ॥ १ ॥ जाके उदयते प्रभा सहित शरीरहोय सो आदेयनाम कर्म है ॥ जाके उदयते प्रभारहित शरीर होय सो अनोदय नाम कर्म है ॥ १ ॥ जाकेउदयते पवित्र गुण लोकमै प्रगट होय सो यशस्कीर्ति नाम

है ॥ १ ॥ जाके उदयते अवगुण प्रगट होय सो अयशकीर्ति नामहै ॥ १ ॥ जाके उदय ते अचिन्त्यबिभूति विशेषसहित अर्हंतपणाकाकारणप्राप्तहोना सो तीर्थंकर नामहै ॥ १ ॥ ऐसें तिराणवेप्रकार नाम कर्मकी प्रकृति कहीं ॥

उच्चैर्नीचैश्च ॥ १२ ॥

अर्थ ॥ जाके उदयते लोकपूज्यकुल मे जन्महोय सो उच्चगोत्र है ॥ १ ॥ जाके उदयते निन्द्य कुलमें जन्महोय सो नीच गोत्र है ॥ १ ॥ ऐसें दोय प्रकार गोत्र कर्म कह्या ॥

दानलाभभोगोपभोगवीर्याणां ॥ १३ ॥

अर्थ ॥ अब अन्तराय कर्मकी पांच प्रकृती कहैहें ॥ जाके उदयते देनेकी इच्छा करे तोहूं दीयानहीं जाय सो दानांतराय है ॥ १ ॥ जाके उदयते लेनेकी इच्छा होय तोहूं लाभ नहीं होय सो लाभांतराय है ॥ १ ॥ जाके उदयते भोगनेकी इच्छाकरै तोहूं भोगनहींसकै सो भोगांतरायहे ॥ १ ॥ जाकेउदयते उपभोगकरने की इच्छा करे तोहूं उपभोग नहिकरिसकै सो उपभोगान्तराय है ॥ १ ॥ जाके

नहींहोय सो जाके उदयते कोऊकार्यकरनेको उत्साहकरे तोहू उत्साहका सामर्थ्य
वीर्यांतरायकर्म है ॥ १ ॥ ऐसें अन्तराय कर्मकी पांच प्रकृति हैं ॥ ऐसी कर्मोंकी
मूल प्रकृति आठ अर उत्तर प्रकृति एकसौअड़तालीसकहीं ॥ अब एक समयमै
जो कर्म बंधे है ताकी स्थितिके कालको कहैहैं ॥

आदितास्तिसृणामन्तरायस्यचात्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटयाः
परास्थितिः ॥ १४ ॥

अर्थ ॥ ज्ञानवरण १ दर्शनावरण १ वेदनीय १ अर अंतराय १ ये चारकर्म
की उत्कृष्टास्थिति तीसकोडाकोडी सागर प्रमाण है॥ सोउत्कृष्टास्थितिवंद मिथ्या
दृष्टि संज्ञीपंचेंद्रिय पर्याप्तजीवकैं होय है ॥ एकेन्द्रिय पर्याप्तके एक सागरके सात
भाग कीजे तिनमै तीन भाग स्थिति हैं॥ पचीससागरके सातभागमै तीनभाग
स्थिति द्विंद्रीय पर्याप्तके हैं ॥ त्रींद्रियपर्याप्तके पचाससागरके सातभागमै तीन
भाग हैं ॥ चतुरिंद्रिय पर्याप्तकैं सौ सागरकै सात भागमै तीनभाग हैं॥ असंज्ञी
पंचेंद्री के एक हजार सागरके सातभागमै तीन भाग हैं ॥ पर्याप्तिसंज्ञीपंचेंद्री

के अंतःकोडाकोडी सागर प्रमाण हैं ॥ एकेंद्रियादिकके पूर्वोक्त पल्यकै असंख्यात भाग हीन जाननां ॥

सप्ततिर्मोहनीयस्य ॥ १५ ॥

अर्थ ॥ मोहनी कर्मकी उत्कृष्टस्थिति सत्तर कोडाकोडी सागरकी मिथ्यादृष्टी संज्ञीपर्याप्तकि हैं ॥ ये केंद्रिय के एक सागरकी है ॥ द्वींद्रियकै पच्चीससागरकी ॥ त्रींद्रिय के पचास सागरकी ॥ चतुरिंद्रियकै सो सागरकी ॥ असैनीपंचेंद्रियकै हजार सागर की पर्याप्त अवस्थामै उत्कृष्टस्थिति हैं ॥

विंशतिर्नामगोत्रयोः ॥ १६ ॥

अर्थ ॥ नाम कर्म अर गोत्र कर्म की उत्कृष्टस्थिति वीस कोडा कोडी सागरकी है ॥

त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमान्यायुषः ॥ १७ ॥

अर्थ ॥ आयु कर्मकी उत्कृष्टस्थिति तेंतीससागरकी है ॥ अब कर्मकी जघन्य स्थितिबंध कहैहै ॥

अपराद्वादशमुहूर्तावेदनीयस्य ॥ १८ ॥

अर्थ ॥ वेदनीय कर्मकी जघन्यस्थिति द्वादश मुहूर्तकी है ॥

नामगोत्रयोरष्टौ ॥ १९ ॥

अर्थ ॥ नामकर्म अर गोत्रकर्मकी जघन्यस्थिति अष्टमुहूर्तकी है ॥

शेषाणामंतर्मुहूर्ताः ॥ २० ॥

अर्थ ॥ शेष जे ज्ञानावरण १ दर्शनावरण १ मोहनीय १ आयु १ अंतराय १ ये पांच कर्मकी जघन्यस्थिति अंतरमुहूर्त प्रमाण है ऐसें एक समय मै जो कर्म बंधे हैं ताकी उत्कृष्टस्थिति तथा जघन्यस्थिति कहीं ॥ अब अनुभाग कहे हैं ॥

विपाकोनुभावः ॥ २१ ॥

अर्थ ॥ जो कर्म प्रकृति उदयमै आवै ताका रस अनुभवमैआवै सो अनुभव है॥

सयथानाम ॥ २२ ॥

अर्थ ॥ जैसा प्रकृतिकानाम ताका तैसाही रस देनेकास्वभावहै जैसें ज्ञानावरणका उदय जिस आत्माको आवै तिसको ज्ञानका अभाव होय अर दर्शना

वरणीय कर्मके प्रकृतिका उदय आवै तो दर्शन नही होने दे तैसे समस्त कर्म का स्वभाव है ॥

ततश्चनिर्जरा ॥ २३ ॥

अर्थ ॥ कर्म रसदीये पीछे निर्जराहीने प्राप्त होय है ॥

नामप्रत्ययाःसर्वतोयोगविशेषात्सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिताःस र्वात्मप्रदेशेष्वनंतानंतप्रदेशाः ॥ २४ ॥

अर्थ ॥ अव प्रदेशबंध कहैहैं ॥ नाम जे समस्त कर्मकी प्रकृतिहोनेको कारण, ऐसें सर्वभावनमें मन वचन कायकेयोग इनके विशेषते सूक्ष्म एक क्षेत्रमेंअव-गाह करि तिष्ठते समस्त आत्मप्रदेशमें अनंतप्रदेश हैं ॥ भावार्थ ॥ एक आत्मा का असंख्यात प्रदेशहै तिस एकएक प्रदेश प्रति अनंतानंत पुद्गल केस्कंध एकएक समय मै बंधरूप होय तिष्ठै सो प्रदेश बंध है ॥ ते पुद्गल स्कंध केसे हैं, समस्त ज्ञानावरणादिक मूल प्रकृति तथा उत्तरोत्तर प्रकृति होनेको कारण हैं, बहुरि ते पुद्गल स्कंध केसे है समस्त त्रिकालवर्ती भावनामै मन वचन काय रूप योगके

निमित्त तैं आवै है अर सूक्ष्म है इंद्रिय गोचर नाहीं ॥ वहुरि आत्माके प्रदेश अर कर्म के प्रदेश क्षीर नीरकी ज्यों एक क्षेत्र अवगाह करि तिष्ठे हैं ॥

सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणिपुण्यं ॥ २५ ॥

अर्थ ॥ सातावेदनीय १ शुभआयु ३ शुभनाम ३७ शुभगोत्र १ ये पुण्य प्रकृति ४२ हैं सो कहेहैं ॥ तिनमै तिर्यंच आयु १ मनुष्यायु १ देवाय १ ये तीन शुभ आयु प्रकृति है॥ अर मनुष्यगति १ देवगति १ पंचेयद्रियजाति १ पांचशरीर ५ तीन आंगोपांग ३ समचतुरसंस्थान १ वज्रऋषभनाराचसंहनन १ प्रशस्तवर्ण १ रस १ गंध १ स्पर्श १ मनुष्यगत्यानु पूर्वी १ देवगत्यानुपूर्वी १ अगुरुलघु १ परघात १ उच्छ्वास १ आताप १ उद्योत १ प्रशस्त विहायोगति १ बादर १ परयाप्त १ प्रत्येकशरीर १ शुभ १ सुस्वर त्रस १ शुभग १ स्थिर १ आदेय १ यस कीर्ति १ निर्माण १ तीर्थंकरनाम १ ये सैंतीस नाभ कर्मकी हैं ॥ बहुरि उंचगोत्र १ सातावेदनीय १ ये ४२ पुण्य प्रकृती हैं ॥

अतोन्यत्पापं ॥ २६ ॥

अर्थ ॥ इन पुन्य प्रकृती तै अन्य पाप प्रकृति है ॥ ज्ञानावरणकी ५ दर्शनावरणकी ९ मोहनीकी २६ अंतरायकी ५ अर नरगति, तिर्यंचगति, ऐसीगती २ अर पंचेंद्रियविनाजाति ४ संस्थान ५ संहनन ५ अप्रशस्तवर्ण १ रस १ गंध १ स्पर्श १ नरकगत्यानुपूर्वी १ उपघात १ अप्रशस्त विहायोगति १ स्थावर १ सूक्ष्म १ अपर्याप्त १ साधारणशरीर १ अस्थिर १ अशुभ १ दुर्भग १ दःस्वर १ अनादेय १ अयशकीर्ति १ ये चवतीस नाम कर्मकी अर असातावेदनीय १ नरकआयु १ नीचगोत्र १ ये ८२ पाप प्रकृती हैं ॥

इतितत्वार्थाधिगमेमोक्षशास्त्रेअष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

॥ नवमोऽध्यायः ॥

आश्रवनिरोधःसंवरः ॥ १ ॥

अर्थ ॥ नवीनकर्म आवने के कारण सो आश्रव हैं ॥ आश्रवका रोकना सो संवर हैं ॥ तिनमें संसार परिभ्रमणकूं कारण ऐसी, मिथ्यात्व रागादि परणतिरूप क्रियाकात्याग सो भावसंवर हैं अर भाव संवर पूर्वक कर्म पुद्गल के ग्रहण करने

का अभाव रूप क्रिया सो द्रव्य संवर है ॥ १ ॥

सगुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरिषहजयचारित्रैः २ ॥

अर्थ ॥ संसारके कारण मिथ्यात्व, रागादिक, इनतै आत्माका रक्षण सो गुप्ति है ॥ प्राणी के पीडाका परित्यागकरिकै आहार विहारादिक के अर्थि, सम्यक् प्रवृत्ति सो समिति है ॥ शरीरादिकका स्वभाव चिंतवन करना सो अनुप्रेक्षा है॥ क्षुधादिक वेदना की उत्पत्तिहोतै कर्म निर्जराके अर्थि, समभावतै परिषहका सहना सो परिषहजय है ॥ संसार परिभ्रमणका कारण जो क्रिया ताको त्याग सो चारित्र है ॥ ये गुप्ति १ समिति १ धर्म १ अनुप्रेक्षा १ परिषह १ चारित्र १ यह छहभावतै संवर होय है ॥

तपसानिर्जराच ३ ॥

अर्थ ॥ तप करि निर्जरा होय है, च शब्दतै संवर भी होय है ॥

सम्यग्योगनिग्रहोगुप्तिः ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ संसारसुख की वांछा रहित इंद्रिय संयमके अर प्राणसंयमके निमित्त

मन वचन काय इनकी क्रियाका रोकना सो गुप्ति है ॥

ईर्याभाषैषणादानानिक्षेपोत्सर्गाःसमितयः ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ अब पांच समिति कहै हैं ॥ जीवस्थान योनिस्थानका जाननहारा साधुकै सूर्यका उदय होतै, नेत्रनितै च्यार हस्त प्रमाण भूमिको अवलोकनकरि हस्ती घोड़ा वलध गाडा गाडी मनुष्यकरि मर्हली भूमि विषै, आहार विहार निहारि गुरुवंदना तीर्थ वंदना इनके निमित्त गमन करना सो इर्यासमिति है १ वहुरि पृथ्वी कायकादिकमें आरम्भकी प्रेरना रहित, कठोरता निष्ठुरता परपीडादि रहित, हित मित मधुर ऐसा वचन बोलना सो भाषा समिति हैं ॥ १ ॥ छीयालीस दोष, वत्तीस अंतराय, चौदह मल, इनतै रहित, निर्दोष आहारका ग्रहण करना सो येषणासमिति है ॥ १ ॥ बहुरि शरीर उपकरणादिक को देखी सोधि, मेलना लेना सो आदान निक्षापना समिति है १ वहुरि नख केश मल मूत्र कफादिकको शुद्धभूमिको देख क्षेपण करना सो उत्सर्ग समिति हैं, इसको क्षेपणासमिति कहै हैं १ ॥

उत्तमक्षमामार्द्दवआर्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्र
ह्मचर्याणिधर्मः ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ अब दशधर्म कहैं हैं ॥ शरीर की स्थिति जो आहार ताके अर्थि पर
घर प्रति गमनकरते जे साधु ताको, दुष्टके क्रोधके वचन हास्य अवज्ञा ताडन
शरीरका घात इत्यादिक होतेहूं परिणाममें कलुषताका अभाव सो उत्तमक्षमाहै
१ जाति आदि आठ मदका अभाव सो मार्द्दवहै २ मन वचन कायकी वक्रता
का अभाव सो आर्जव है ३ लोभ जनित मलिनताका अभाव सो शौच हैं ४ मुनि
श्रावकको सुंदर वचन कहना सो सत्य है ५ धर्मकी वृद्धिके अर्थि, छह इन्द्रिय
के विषय अर षटकायके जीवकी विराधनाका अभाव सो संयम है ६ कर्म क्षय
के अर्थि, तपीये सो तपहै ७ संयमी के योग्य ज्ञानादिकका दान देना सो त्याग
है ८ शरीरादिकमें ममत्वका अभाव सो आकिंचन्य है ९ पूर्वी अनुभवी स्त्रीका
स्मरण, कथा श्रवण, अवलोकनादिकका त्याग सो ब्रह्मचर्य है ॥ स्वस्त्रीमें संतो
ष, परस्त्रीका त्याग सोही ब्रह्मचर्य है ॥ स्वस्त्री तथा परस्त्री दोनूका त्याग सो उ-

त्तम ब्रह्मचर्य है १० ये दश धर्म परमसंवरके कारण हैं ॥

अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुच्याश्रवसंवर निर्जरा
लोकबोधिदुर्ल्लभधर्मस्वाख्यातत्वानुचिंतनमनुप्रेक्षाः॥७॥

अर्थ ॥ अब द्वादश अनुप्रेक्षा का वर्णन करे हैं ॥ अब अनित्यभावना कहेहैं ॥ ये शरीर, इंद्रिय विषयोपभोग, द्रव्य, हैं ते जल के बुदाबुदावत् हैं अस्थिर हैं, मोहतै अज्ञानीस्थिर मानै है, संसार में कोऊ वस्तु ध्रुवनही है, एक आत्माका ज्ञान दर्शन स्वभावही ध्रुव है ॥ ऐसें ध्रुवपणा चिंतवन करना सो अनित्य भावनाहैं १ ऐसें अनित्यता चिंतवन करने से, भोगकरि छांड़े ऐसें पुष्प माल्यादिकका वियोगकालमें दुःख नहीं उपजे है ॥ अब अशरण भावना कहे हैं ॥ जैसें, वन में बलवान क्षुधावान व्याघ्रकरि पकऱ्या मृगका बच्चा इसको कोऊ शरण नहीं तैंसें जन्म मरण व्याघ्रके संकटरूप परिभ्रमण करते प्राणी को, कोऊ देव दानव मंत्र यंत्र तंत्र योगिनी यक्ष क्षेत्रपालादि शरण नहीं हैं, पुष्टशरीर भोजन प्रति सहाइ है, कष्ट आये आत्माको महादुःख उपजावै है अर बडे यत्नकरि संचयकिया

बांधव मित्रादिकहूं रोगको आवतै तथा मरणको आ-
धन परलोक नहीं जाय है, बांधव मित्रादिकहूं रोगको आवतै तथा मरणको आ-
वतैं नहीं रक्षा करै है, विषयभोग भोजनादिक वढावैं हैं और दुःखमें कोऊ अप
ना नहीं. कर्म के उदयतै रोकनेको कोऊ समर्थ नहीं है, सम्यक् आचरण किया
धर्महीं एक शरण है ॥ मृत्युके आवतै इंद्रादिक कोऊ शरण नहीं ऐसी भावना
करना सो अशरणानुप्रेक्षा है ॥ २ ॥ मै अशरणहूं ऐसें चिंतवन करनेसे संसार
के पदार्थमें ममत्वका नाश होय तादि अर्हत् (सर्वज्ञ) प्रणीत मार्गमें युक्तहोय
हैं ॥ अब संसारानुप्रेक्षा कहे हैं ॥ कर्म के वशतै संसारी अनादिकालतै पंच प-
रावर्तन रूपकरि परिभ्रमण करै है अनेक योनि जन्म कुल कोडके संकटमें कर्म
का प्रेर्या जीव, पिता होय भाई होय है पुत्रहोय है पोता होयहै माता भगिनी
स्त्री पुत्री होय है, शत्रुका मित्र मित्रकाशत्रु होय है राजाका रंक रंककाराजा देव
का तिर्यंच तिर्यंचका देव इत्यादिक अनेक परिभ्रमणरूप संसारमें कहूं स्थिरता
है नहीं अनंतानंतकालसूं उलट पलट होय अनेक दुःख भोगवै है ऐसें संसारका
स्वरूप चिंतवन करना सो संसारानुप्रेक्षाहे ३ ऐसें संसार भावनाकूं भावनेतै संसार

के दुःखतै भयउपजैहै तदि विरक्तहुआ संसार के हननेके अर्थि यत्नकरैहैं ॥ अब एक त्वानुप्रेक्षा कहेहैं ॥ जन्म मरण के महादुःख भोगनेको मै एकहीहूं कोऊ मेरास्व जन परिवार नाहीं है, एकाकी नरकादिकनि मै जन्म ग्रहणकरूंहूं अर मरणमै रोग मै दरिद्र मै महाघोर संकटमै एकाकीहूं अर स्वर्ग राज्यादिक विभव भोगने मै हू मै एकाकीहूं, व्याधि जन्म मरणादिक दुःखहरने में कोऊ सहाई नहीं है बंधु मित्रादि स्मशान तै अधिक नहीं जाय है एक अविनासी धर्मही सहाई सहगामी है ऐसें चिंतवन करना सो एकत्वानुप्रेक्षा है ॥ ४॥ ऐसें चिंतवन करने तेस्वजन में प्रीति राग नहीं बधेहे परममें द्वेष नहीं उपजे तदि परमवीतरागताको प्राप्ति भया मोक्षकेअर्थियत्न करेहैं॥ अब अन्यत्वानुप्रेक्षा कहे हैं ॥ येशरीर बंधन प्राति मोत येकहे अरलक्षण भेदतेमैभिन्नहूं,शरीरहूं द्रिय रूपहैमै अतींद्रिय रूपहूंशरीर अज्ञानीहै में ज्ञानी हूं, शरीर अनित्यहै मै नित्यहूं,शरारि आद्यन्तवान है मै अनादि अनन्तहूं, संसारमै अनवास्थितरूप परिभ्रमणकरता जोमैताके वहुतशरीर व्यतीत भये सोहीमैहूं जो शरीरहीते मेरा अन्यपणाहैतोवाह्यपरिग्रह तै अन्यपणाकैसे नहींहोयऐसेमनविषै

धारण करने तै शरीरादिकमै वांछा नहीं उत्पन्न होय है तदि तत्वज्ञान पूर्वक वैराग्यकी वृद्धि होते अविनाशी मोक्ष सुखकी प्राप्ति होयहै ॥ ५ ॥ अब अशुचित्वानु प्रेक्षा कहैहैं ॥ ये शरीर अत्यन्त अशुचि है अति दुरगंधरुधीर वीर्यतै उपज्या है अशुचि आहार करही वध्या है मलवत् अशुचिका भाजनहै, चामकरिढक्या अ-तिदुर्गंध रसकूं नवद्वारकरि झरै हैं, आश्रित वस्तुकूं हूं अंगाराका ज्यौं आपसमान अशुचि करैहै, स्नान अनुलेपन धूप पुष्पमालादिकरिहूं इस शरीरका अशुचिपणा दूर करनेको नहीं समर्थ होय है, अनुभव किया हुवा सम्यक् दर्शनादिक आत्माके अत्यन्त शुद्धता प्रगट करैहै ऐसैं चिन्तवन करने तै शरीरतै विरक्त होय तद् सं-सार समुद्रके तरनेके अर्थि चित्त धारण करैहैं ॥ ६ ॥ अब आश्रवानुप्रेक्षा कहैहैं ॥ कर्म के आश्रव इस लोक परलोक मै नाश करनेवाले हैं, महानदीके प्रवाहवत् तीक्ष्ण इंद्रिय कषाय अव्रतादिक है, तिनमै स्पर्शनादिक इंद्रियकी आताप करिके ही वनका हस्ती, वायस, सर्प, पतंग, हरिणादिक, कष्ट समुद्रमै प्रवेश करैहै तथा कषाय अव्रतादिकहूं इसीलोकमै बध, बंध, अयश, क्लेशादिकको उपजावै है अर पर

लोकमें बहुतदुःखकरि प्रज्वलित नानागतिमैं परिभ्रमण करावै है॥ ऐसैं आश्रवके दोषको चिन्तवन करना सो आश्रवानुप्रेक्षा है॥ ऐसैं चिन्तवन करने तै जीव कै उतम क्षमादिक परम धर्म बिषै कल्याणरूप बुद्धि नहीं छूटे है॥ ७॥ अब संवरानुप्रेक्षा कहै है॥ इन्द्रिय कषायादिककरि संकुचित जो आत्माताकै समस्त दोष काछवाकी ज्यौं नहीं होय है॥ जैसे महान् समुद्र मै प्रवेश करती जो नाव ताके छिद्रको ढांकते जल प्रवेश नहीं करै, तदि नावमैं तिष्टता पुरुष का नाश नहींहोय अर वांछित देशको प्राप्तहोय है॥ तैसें कर्म आवने के द्वार जे आश्रव ताको रोकतै संते अकल्यान नहीं होय॥ ऐसें चिंतवन करनेतै संवरानुप्रेक्षा होयहैं ऐसें चिंतवन करनेसे संवरमें नित्यही उद्यमीपणा होयहै तदि मोक्षपदकी प्राप्तिहोयहैं ८॥ अब निर्जरानुप्रेक्षा कहै हैं॥ निर्जरा दोय प्रकारहैं, एक तो आपणा रस देय निर्जरै है सो सविपाक निर्जरा है, अर तपश्चरण करणेतै, परीषहके जीतनेतै, जो निर्जरा होय सो अविपाक निर्जरा है॥ सविपाक निर्जरा तो समस्त संसारी जीव कै होयहै अर आगामी बन्धको कारणहै, तातै त्यागने योग्यहै अर अविपाक नि-

॥

र्जरा मोक्षका कारणहै ताते ग्रहणकरने योग्य हैं ॥ ऐसें निर्जरानुप्रेक्षा चिंतवन क-
रने तें कर्म के निर्जरा के अर्थही प्रवृत्ति होय है ॥ ९ ॥ अब लोकानुप्रेक्षा कहैहैं॥
लोक संस्थानादिकका चिंतवन तथा पापका फल नरक, पुण्यका फल स्वर्ग, इ-
त्यादिक चिंतवन तथा षट्द्रव्यका गुण पर्यायात्मक स्वरूपका चिंतवन सों लोका-
नुप्रेक्षाहै ॥ याके चिंतवनतैं समस्त परद्रव्यतै अपना स्वरूपको भिन्न अनुभव
करि पुण्य पापात्मकलोकतैं भिन्न ऐसा मोक्षसाधन में यत्नकरै ॥ १० ॥ अब बो-
ध दुर्लभानुप्रेक्षाकहै हैं ॥ एक निगोदशरीर में सिद्धरासीतै अनन्तगुणे जीवहैं अर
निगोदजीवतै समस्तलोक अन्तर रहित भर्याहै तथा पंचप्रकार स्थावर जीव
करि निरन्तर भर्या है तिनमें त्रसपणा पावना, वालूके समुद्रमें पड़ी वज्रकणि
का कीज्यो अतिदुर्लभहै अर कदाचित् त्रसपणा पावै तिनमें विकलेंद्रियका प्र-
चुर पनाते पंचेंद्रियपणा पावना जैसें गुणवन्त में कृतज्ञपणा पावने की ज्यो दु-
र्लभ है ॥ पञ्चेन्द्रिय में हूं तिर्यंचकी बाहुल्यताते, चोहटमें रत्नरास पावना ज्यौं
मनुष्यपना पावना अत्यन्त दुर्लभ है ॥ अर मनुष्य भवपाय करिकेहूं जो

छूटजाय तो फेर मनुष्यपणा की उत्पाति अतिदुर्लभ है जेसें दग्ध भया वृक्षका फिर हरित होना जेसें दुर्लभ है तैसे मनुष्यपणा पावना अतिदुर्लभहैं ॥ मनुष्य भवहूं पावे तो उसमें उतमदेश उतमकुल इंद्रिय परिपूर्णता सम्पदा निरोगपणा बुद्धिबल सत्संगाति इनका पावना उत्तरोत्तरो दुर्लभ है अर समस्त येऊपावे अर जो साचेधर्म का अवलंबन नहीं होय तो नेत्र रहित मनुष्य की ज्यौं जन्म व्यर्थ जाय है अर इतने कष्ट तै धर्म हू पाजाय अर फेरहू भोगमें रागीहोना भस्मके अर्थि गोसीरस चंदनकौ दग्धकरनेकी ज्यौ निष्फल है अर विषयसुखमें विरक्त के हू तपाभावना धर्मप्रभावना समाधिमरण अत्यंतदुर्लभ है, समाधिमरण होतै ही बोधलाभ फलवान् है ॥ ऐसैं चिंतवन करनेतै बोधपाय प्रमादी रहना नहीं होय है ॥ ११ ॥ अब धर्मानुप्रेक्षा कहैहैं ॥ ये जिनेंद्रकौ उपदेश्योधर्म अहिंसाल-क्षण हैं हत्य के आधार हैं विनय याका मूल हैं। क्षमा याका वल है। ब्रह्मचर्य याकी रक्षा हैं कषायका अभाव यामे प्रधान है ॥ ममत्वका त्याग परिग्रहका त्याग याका अवलंबन है ॥ इस धर्मका लाभविना अनादिसंसारमें परिभ्रमण

करते जीव दुष्ट कर्मके उदयतै उपजै नानादुःख को अनुभवै हैं ॥ इस धर्मका लामहोते नानाप्रकार स्वर्गादिकके सुखकी प्राप्ति पूर्वक मोक्ष की प्राप्ति होय हैं ताते धर्म भावनाकौ चितवन करने त धर्ममे अनुराग तै प्रवृत्ति होय हैं ॥ १२ ॥ ऐसैं बारह भावना तै महान्संवर होयहैं ॥ ७ ॥

मार्गाच्यवननिर्जरार्थंपरिषोढव्याःपरिषहाः ॥ ८ ॥

अर्थ ॥ संवरके मार्गते नहीं चिगने के अर्थि अर कर्मनिर्जराके अर्थि, क्षुधा तृषादि परीषह सहना योग्य है ॥ ८ ॥

क्षुतपिपासासीतोष्णदंशमसकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्यानिषद्याशय्याक्रोशवधयाचनालाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाज्ञानादर्शनानि।९।

अर्थ मोक्षके अर्थि क्षुधादि बाईस परी षहसहना योग्य हैं। क्षुधा का परीषह १ तृषा १ सीत १ उष्ण १ दंशमसक १ नग्न १ अराति १ स्त्री १ गमन १ बैठण १ शयन १ क्रोध १ मारनका १ याचना नहीं करना १ लाभ १ रोग १ तृणादिक स्पर्शका १ शरीर के मलादिक का १ सत्कार पुरस्कार करनेका १

वृद्धि नहीं होने का १ अज्ञानता का १ अदर्शना का १ ये बाइस परीषहका समभावतै सहना परमसंवर हैं ॥ ९ ॥

सूक्ष्मसांपरायछदमस्थवीतरागयोश्चतुद्दश ॥१०॥

अर्थ ॥ सूक्ष्मसांपराय अर छद्मस्थवतिराग जो ग्यारमा बारमा गुणस्थान वरती जीवकै चौदह परीषह होय हैं ॥ क्षुधा १ तृषा १ शीत १ उष्ण १ दंशमसक १ चर्या १ शय्या १ वध १ अलाभ १ रोग १ तृणस्पर्श १ मल १ प्रज्ञा १ अज्ञान १ ये चौदह परीषह है॥ अन्य परिषह का अभाव है। १०।

एकादशाजिने ॥११॥

अर्थ॥ घातिया कर्मका नाशकरि जिन जो अरिहंत ताकै ग्यारह परिषह हैं भगवान के घातिया कर्म के अभाव तै एकहूं परीषह नहीं है तथापि वेदनीकर्म के सद्भाव तै उपचारिक ग्यारस परीषह कहेहैं। ये ग्यारह परीषा के नाम इस आध्यायमें सोलह वा सूत्रमें आगे कहसी ॥ मुख्यपणा करि वेदनी कर्म में शक्ति के अभावते भगवान् कै परीसह देनेकौ शक्ती नहीं हैं ॥

बादरसांपरायेसर्वे ॥ १२ ॥

बादर सांपराय कहिये प्रमत्त गुणस्थान से अनिवृत्तिकरण जो नवमगुणस्थान पर्यंत समस्त बाईस परीषहही है ॥

ज्ञानावरणेप्रज्ञाज्ञाने ॥ १३ ॥

अर्थ ॥ ज्ञानावरणके होने प्रज्ञापरीषह अर अज्ञान परीषहहोय है ॥

दर्शनमोहांतराययोर्दर्शनालाभौ ॥ १४ ॥

अर्थ ॥ दर्शनमोहके होते अदर्शन परीषह होय है ॥ अंतराय कर्मके उदय अलाभपरीषह होय है ॥

चारित्रमोहेनाग्न्यारतिस्त्रीनिषद्याशय्याक्रोशयाचनासत्कार पुरस्काराः ॥ १५ ॥

अर्थ ॥ चारित्र मोह होतै नग्न १ अरति १ स्त्री १ निषद्या १ आक्रोश १ याचना १ सत्कार १ पुरस्कार १ ये सात परीषहहोयहैं ॥

वेदनीयशेषः ॥ १६ ॥

अर्थ ॥ ये ज्ञानावरणादि निमित्त तैं कहे जे परिग्रह, तिनतैं अवशेष रहे परीषह, जे क्षुधा १ तृषा १ शीत १ उष्ण १ दंशमसक १ चर्य्या १ शय्या १ वध १ रोग १ तृणस्पर्श १ मल १ ये ग्यारहपरीषह वेदनीय के होतै होय हैं

एकादयोभाज्यायुगपदेकस्मिन्नेकोनविंशतिः ॥ १७ ॥

अर्थ ॥ एक आत्माकैं युगपत् (एकैकाल) उगणीस पर्यंत परीषह आवै है ॥ जातै शय्या १ गमन १ बैठना १ इन तीनमें युगपत् येकही परीषह होय है अर सीत १ उष्ण १ इनदोनूं मैं येकहीहोयहै ॥ ऐसें उगणीस परीषह युग्पतहोयहै ॥

सामायिकच्छेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसांपराययथा ख्यायतमितिचारित्रं ॥ १८ ॥

अर्थ ॥ अब पांच प्रकारे चारित्र कहेहैं ॥ समस्तसावद्ययोगका अभेदकरिजामैं त्याग होय सो सामायिकचारित्र हैं ॥ १ ॥ प्रमाद के वसतै उपज्या जो दोष ताकरि संयमका लोप भया होय ताका प्रायश्चित्तादि इलाजकरिसंयमको स्थापनकरना सो छेदोपस्थापना है ॥ तथा अहिंसादिक तथा समित्यादि भेदकरना सो छेदोप-

स्थापना चारित्र है ॥ २ ॥ बहुरिप्राणके पीड़ाका परिहारकरि जहां विशुद्धताविशेष होय सो परिहार विशुद्धि संयम है ॥ परिहारविशुद्धिविषै ऐसाविशेषहै, इस को धारण करनेवाला पुरुष जन्मते तिसवर्षका होय सर्वकाल सुखीहुआसंता आप दीक्षा ग्रहणकरि पृथक्तवर्ष (३ । ९) पर्यंत तीर्थंकर भगवानके चरणकेनिकट प्रत्याख्याननामा नवमा पूर्वपढ्याहोय सो परिहारविशुद्धिसंयमको अंगीकार करै ॥ तीनूसन्ध्याविना समस्त कालमैं दोयकोस प्रमाण विहार करैहै ॥ रात्रि विहार नहीं करै, वर्षाकालमै नियमसहित होय.जीवकी उत्पत्ति, मरणके ठिकाणे, कालकी मर्यादा, जन्मयोनीके भेद, द्रव्यक्षेत्र केस्वभाव, विधानकाजाननहारा, प्रमाद रहित, महावीर्यवान होय, ताके परिहारविशुद्धिहोय है ॥ परिहारविशुद्धि संयमका जघन्यकाल अन्तरमुहूर्त है जातै अन्तरमुहूर्त मै गुणस्थान पलटिजाय तो छूटैहै ॥ छटे सातवे दोयगुणस्थानही में रहै हैं ॥ उत्कृष्टकाल अड़तीस वर्ष घाट कोट पूर्वककाहै ॥ जैसैं कमलपत्र जलकरि नहीं लीपै हैं ॥ ३ ॥ बहुरिजो सूक्ष्म स्थूल प्राणीकी पीड़ाका परिहारमै प्रमादरहित अर आत्मानुभवविषे उत्साह

युक्त अखण्डक्रिया युक्त सम्यक्दर्शन ज्ञानरूप प्रचण्ड पवनकरि प्रज्वलितभई जो विशुद्धिअभिप्राय रूप अग्निकी शिखा इनकरिदग्धभयाहै कर्मरूपईन्धनजाकै अर ध्यानके विशेषकरि क्षीण किये हैं कषायरूप विषके अंकुर जानै अर नाश कै सन्मुखभया है मोह कर्म जाकै, यातै पाया है सूक्ष्मसांपरायनाम जानै, ऐसा सूक्ष्म सांपराय संयम हैं ॥ ४ ॥ बहुरि मोहिनीय कर्मके क्षयतै तथा उपशमतै जैसा आत्मा का स्वभाव तथा विकार रहित शुद्धस्वाभाव इनका प्रगट होना सो यथाख्यात चारित्र है ॥

अनशनावमोदर्य्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्या सनकायक्लेशबाह्यंतपः ॥ १९ ॥

अर्थ ॥ अब छहप्रकार बाह्यतप कहै हैं ॥ इसलोकका फल जो धनप्राप्ति लोक प्रशंसा रोगका अभाव भयका अभाव मंत्र साधनादि फल, तथा विषय साधनादि रूप स्वर्गादिक के सुख ये परलोकफल इत्यादिक की वांछा रहित संयम की सिद्धि रागका उच्छेद कर्मका विनाशक ध्यान स्वाध्यायादिक की सिद्धिकैअर्थि

एक दिनादि प्रमाणकरि भोजनका त्याग करना सो अनशनतप हैं ॥ १ ॥ सं-
यम के सिद्धीकै अर्थि, निद्राके जीतने के अर्थि, वात पित्त कफादि दोष प्रशमके
अर्थि, संतोष स्वाध्यायकी सिद्धिके अर्थि, अल्पभोजन करना सो अवमोदर्य्यतप
हैं ॥ २ ॥ आशा के अभाव के अर्थि भिक्षाकै अर्थि साधुकै येक गृहादिकका तथा
भाजन भोजनादिकका नियम करना सो वृत्तिपरिसंख्यातप हैं ॥ ३ ॥ इंद्रिय के
दर्पका निग्रहके अर्थि, निद्राका विजय, स्वाध्यायकी सुखरूपासिद्धीकै अर्थि, घृता-
दिक रसका परित्याग सो रसपरित्याग नामा तपहैं ॥ ४ ॥ जीवकी पीडा रहित
एकांत शून्य गृहादिक में शयन आसन करना सो विविक्तशय्यासन नाम तपहैं ॥
यातै बाधाका अभाव, ब्रह्मचर्य, स्वाध्याय, ध्यान, इनकी सिद्धिहोय हैं ॥ ५ ॥
ग्रीषमऋतुमें पर्वतके शिखरपर अर वर्षाऋतु में वृक्षके तले अर सीत ऋतुमें चौ-
हटे नदी के किनारे बहुत प्रकार कायोत्सर्ग करना सो कायक्लेशतपहै ये तपकरने
से देहको कष्ट आवतै कायरताका अभाव होय, सुखिया स्वभाव रहनेका अभाव
भोगतै छूटनेका अभाव होय हैं ॥ ६ ॥ ऐसे छः प्रकार बाह्यतप हैं ॥

प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम् ॥ २० ॥

अर्थ ॥ अब छः प्रकार अंतरतप है सो कहै हैं ॥ प्रमादतै व्रतको दोष उत्पन्न होजाय ताके दूरकरनेको जो क्रिया करिये सो प्रायश्चित्त तपहैं ॥ १ ॥ पूज्यपुरुष का आदर करना सो विनयतप हैं ॥ २ ॥ कायकरि तथा आहार वस्तिकादिकरि धर्मात्माकी उपासना करना टहल करना सो वैयावृत्यनामा तप हैं ॥ ३ ॥ ज्ञान की भावना में आलस्यका त्याग सो स्वाध्याय तप हैं ॥ ४ ॥ देह में तथा देहका संबंधमें अपना माननेरूप संकल्पका त्याग सो व्युत्सर्ग तप हैं ॥ ५ ॥ चित्तके विक्षेपका त्याग सो ध्यान नामातपहैं ॥ ६ ॥ ऐसें छः प्रकार अभ्यन्तरतप कह्या ॥

नवचतुर्दशपंचद्विभेदायथाक्रमंप्राग्ध्यानात् ॥ २१ ॥

अर्थ ॥ प्रायश्चित्त नवप्रकार हैं ॥ वैयावृत्य दशप्रकार हैं ॥ स्वाध्याय पांच प्रकार हैं ॥ कायोत्सर्ग दोय प्रकार है ॥ ध्यान के भेद सूत्र २७ में आगे कहसी ॥

आलोचनाप्रतिक्रमणतदुभयविवेकव्युत्सर्गतपच्छेद
परिहारोपस्थापनाः २२ ॥

अर्थ ॥ अब नवप्रकार प्रायश्चित्त कहै हैं ॥ प्रमादतै आपको दोष लाग्याहोय तादि दसदोष रहितहुवा गुरुको अपना दोष निवेदन करना सो आलोचना हैं ॥ १ ॥ मोको दोष लाग्या ते मिथ्या होऊ निःफल होऊ ऐसें वचनकरि प्रगट कहना सो प्रतिक्रमण हैं ॥ २ ॥ आलोचना अर प्रतिक्रमण दोऊ करना सो तदुभयहैं ३॥ दोषतै सहित अन्नपान उपकरणका संसर्ग भयाहोय तौ तिनका त्याग करना सो विवेकहै ॥ ४ ॥ कायोत्सर्गादिक करना सो व्युत्सर्ग हैं ॥ ५ ॥ अनशनादि अंगीकार करना सो तपहैं ॥ ६ ॥ दिवस पक्ष मासादिक की दीक्षाका घटावना सो छेद हैं ॥ ७ ॥ पक्ष मास आदिका विभागतै संघ बारै करना सो परिहारहैं८॥ पीछली दीक्षा छेदी नवीन दीक्षा देना सो उपस्थाना हैं ॥ ९ ॥ ऐसें नव प्रकार प्रायश्चित्त कह्या ॥

ज्ञानदर्शनचारित्रोपचाराः ॥ २३ ॥

अर्थ ॥ अब विनयके च्यार प्रकार कहेहैं ॥ बहुतसन्मानसहित मोक्षकेअर्थि ज्ञानका ग्रहण अभ्यास स्मरण इत्यादिक करना सोज्ञानविनयहै ॥ १ ॥ शंकादि

दोष रहित तत्वार्थका श्रद्धान सो दर्शन विनय है ॥ २ ॥ ज्ञानदर्शनसहित चारित्रमै समाधानरूप चित्तकरना सो चरित्र विनय है ॥ ३ ॥ आचर्यादिकको प्रत्यक्षहोतै उठि खडारहना सन्मुख गमन करना अंजुली करना इत्यादिक उपचार विनय है ॥ ४ ॥ ऐसै च्यार प्रकार विनय तप कहे ॥

आचर्योपाध्यायतपस्वीशैक्ष्यग्लानगणकुलसंघसाधुमनोज्ञानां ॥ २४ ॥

अर्थ ॥ अब वैयावृत्यके दस प्रकार कहे हैं ॥ जिनतै व्रतादिक आचरण करिये सो आचार्य हैं ॥ १ ॥ जिनके निकट मोक्षका कारण शास्त्र पढ़िये सोउपाध्याय हैं ॥ २ ॥ महान् उपवासादि आचरण करनेवाला तपस्वीहै ॥ ३ ॥ शिक्षाका अधिकारी सो शैक्ष हैं ॥ ४ ॥ रोगादिकरि क्लेशरूप होय सो ग्लान है ॥ ५ ॥ वृद्ध मुनीश्वरके परिपाटीका होय सो गणहै ॥ ६ ॥ दीक्षा देनेवाले आचार्य के शिष्य होय सो कुल है ॥ ७ ॥ ऋषी मुनी यती अनगार ये च्यारप्रकार के मुनी का समूह सो संघ हैं ॥ ८ ॥ वहुतकालका दीक्षितहोय सो साधुहैं ॥ ९ ॥ लोक में मान्य होय सो मनोज्ञ हैं ॥ १० ॥ इन दशप्रकारके मुनीश्वरके रोग परीषह

मिथ्यादिका सम्बन्ध आवै तव अपनी कायकरि तथा अन्य द्रव्यकरि तथा उपदेशादि करि तिनका प्रतिकार इलाज करै सो वैयावृत्य है ॥

वाचनापृच्छनानुप्रेक्षाम्नायधर्मोपदेशाः ॥ २५ ॥

अर्थ ॥ अब स्वाध्यायके पांच भेद कहे हैं ॥ निर्दोष ग्रंथ अर अर्थ अर शब्द अर्थ दोऊ का भव्य जीवको सिखावना पढ़ावना सो वाचना है ॥ १ ॥ वहुरि संशय दूर करनेको निर्बाधतत्व के निश्चय करने को ग्रंथके अर्थका तथा ग्रंथ अर्थ दोऊका अन्य बहुज्ञानीको प्रश्नकरना सो पृच्छना हैं ॥ २ ॥ जाने हुयें अर्थ का बारम्बार चिंतवन करना सों अनुप्रेक्षाहैं ॥ ३ ॥ शब्दका शुद्ध घोषना (वोलना) सो आम्नाय हैं ॥ ४ ॥ धर्मवर्द्धनी कथाका उपदेशदेना सो धर्म कथा है ॥ ५ ॥ ऐसैं पांच प्रकार स्वाध्यायतपकह्या ॥

बाह्याभ्यांतरोपध्योः ॥ २६ ॥

अर्थ ॥ अब कायोत्सर्गके दोय प्रकार कहे हैं ॥ धन धान्यादिक तौ वाह्यपरिग्रह हैं अर क्रोध मानादिक अभ्यन्तर परिग्रह है कायकीममना हूं अन्तर परिग्रह

हैं ॥ ये दोऊ उपाधि परिग्रह का त्याग सो दो प्रकार व्युत्सर्ग तप हैं ॥

उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिंतानिरोधोध्यानमान्तर्मुहूर्तात् ॥ २७ ॥

अर्थ ॥ अब ध्यान के लक्षण कहे हैं ॥ वज्रऋषभनाराच, वज्रनाराच, नाराच, ये तीन उत्तम संहनन हैं, इनका धारक पुरुष के चित्तका येकाग्र चिन्तवन मै (रुचीकरना) रोकना सो ध्यान है ॥ अनेक पदार्थ के अवलंबन तैंचलायमान नहीं होय तादि ध्यान है सो उत्कृष्टपणै अन्तर्मुहूर्त पर्यंतरहै अधिक नहींठहरै हैं॥

आर्तरौद्रधर्म्मशुक्लानि ॥ २८ ॥

अर्थ ॥ अब ध्यानके भेद च्यार कहेहैं ॥ ऋतु जो दुःख ताविषै जो चिंतवन उपजै सो आर्तध्यान हैं ॥ १ ॥ रुद्र जो क्रूर अभिप्राय ताविषै जो उपजे सो रौद्रध्यान हैं ॥ २ ॥ धर्मपरिणामरूप चिंतबन मै उपजै सो धर्मध्यान है ॥३॥ आत्माके कषाय मल रहित उज्जलपरिणाममै उपजै सो शुक्लध्यान हैं ॥४॥२८॥

परेमोक्षहेतू ॥ २९ ॥

अर्थ ॥ परे कहिये धर्मध्यान अर शुक्लध्यान ये दोऊ मोक्ष के कारण हैं ॥

आर्त्तममनोज्ञस्यसंप्रयोगेतद्विप्रयोगायस्मृतिसमन्वाहारः ॥ ३० ॥

अर्थ ॥ अमनोज्ञ जो आपकै वाधाका कारण दुष्टजन विष कण्टक शस्त्र शत्रु इनका संयोग होतै जो वारम्वार ऐसा चिन्तवन होय जो मेरे इनका वियोग कैसे होय ऐसा अभिप्राय जो प्रथम आर्त ध्यान है ॥

॥ विपरीतंमनोज्ञस्य ॥ ३१ ॥

अर्थ ॥ अपना धन, स्त्री, पुत्र, मित्र, वांधव, जीविका, इनका वियोग होतै इनकै संयोगकै अर्थि वारम्वार चिन्तवन करना सो दूसरा आर्तध्यान है ॥

वेदनायाश्च ॥ ३२ ॥

अर्थ ॥ आपको रोगकी पीड़ा होतै ताका वारम्वार चिन्तवन करना तथा मेरे इस वेदना का अभाव कैकै होय ऐसा चिन्तवन सो तीसरा आर्तध्यान है॥

निदानंच ॥ ३३ ॥

अर्थ ॥ भोगकी वांछा करि आतुर जो पुरुष ताकै आगामी कालमै विषय भोगकी प्राप्ति वास्ते वारम्वार संकल्प रहै सो चौथा आर्तध्यान है ॥

तदविरतिदेशविरतप्रमत्तसंयतानां ॥ ३४ ॥

अर्थ ॥ ये आर्तध्यान अविरत जेमिथ्यात्वादिक च्यारगुणस्थान वालेकै अर देश व्रती पंचमगुण स्थानवर्ती कै अर प्रमत्त संयत सहावेगूणस्थानवाले कै च्यारही आर्तध्यान होयहैं सहागुण स्थानके ऊपर के गुणस्थान में आर्तध्यान नहीं होय परंतु प्रमत्तसंयत सहावे गुणस्थान में निदाननामा आर्तध्यान नहीं होय अन्य तीनू आर्तध्यान कदाचित होय हैं ॥

हिंसानृतस्तेयविषयसंरक्षणेभ्योरौद्रमविरतदेशविरतयोः ३५ ॥

अर्थ ॥ अब रौद्रध्यान कहै ॥ हिंसा जो प्राणघात अर अनृत जो असत्य अर स्तेय कहिये चोरी परधनहरण, अर विषय संरक्षण जो परिग्रहका ग्रहण रक्षण इन विषे जो वारंवार चिंतवन सो रौद्र ध्यान हैं ये ध्यान अविरतके होय अर आ-रंभ हिंसा धनरक्षणादि करि देश व्रतीकैहू कदाचित होय ॥ संयमीकै नहीं होय अर होय तौ संयमतै छूटिजाय ॥

आज्ञापायविपाकसंस्थानविचयायधर्म्मं ३६ ॥

अर्थ ॥ धर्म ध्यानके भेद कहै हैं ॥ वहुज्ञानी उपदेश दाता के अभावतै, अ-
पनी मन्दबुद्धीतै, कर्म उदय के वसतै, पदार्थ के सूक्ष्मपणाते, हेतु दृष्टांत जाने
विना, सर्वज्ञ के आगम को प्रमाणकरि अर चिंतवन करै जो इसआगममें यह
पदार्थका स्वरूप सर्वज्ञने कह्याहै तैसेही हैं अन्य प्रकार नहीं हैं, सर्वज्ञ वीतराग
देव अन्यथा कहै नहीं ऐसा गहन पदार्थ के श्रद्धानते अर्थका निश्चय करना सो
आज्ञा विचय धर्मज्ञान हैं अथवा आप पदार्थका स्वरूप जानै तैसाही परकौ क-
हने की है इच्छा जाके ऐसे पुरुषके अपने सिद्धांत के अविरोधकरि तत्वार्थको दृढ
करनेका जाके प्रयोजन होय सो तर्क नय प्रमाणकी युक्ति तामै तत्परहुआ सर्वज्ञ
की आज्ञा प्रकाशनेको वारंवार चिंतवन करै सो आज्ञा विचय धर्मज्ञान हे ॥१॥
बहुरि ये प्राणी सर्वज्ञकी आज्ञातै पराङ्मुख है ते समस्त अंधकी ज्यो मिथ्या दृष्टी
हैं अर मोक्षके अर्थी हैं परंतु सम्यक्मार्गतै दूरही प्रवर्तै हैं॥ ऐसें समीचीन मार्ग
का उपाय चिंतवन करना सो अपाय विचय हं अथवा ये प्राणी मिथ्या दर्शन
ज्ञान चारित्र तै कैसे रहित होय ऐसा चिंतवन करना सो अपाय विचय धर्मध्यान

हैं ॥ २ ॥ ज्ञानावरणादि कर्मका द्रव्यक्षेत्रकालभव भाव इनके निमित्ततै भया जो फलका अनुभव ताका चिंतवन करना जो ये कर्मतै उपज्या कर्मका फलमोतै भिन्न है मेरा स्वरूप नाहीं ऐसा चिंतवन सो विपाक विचय धर्मध्यान हैं ॥ ३ ॥ लोकका संस्थानादिकका चिंतवन सो संस्थान विचय धर्मध्यानहैं ॥ ४ ॥ ऐसें धर्म ध्यानके चारि भेद कहे ॥

शुक्लेचाद्येपूर्वविदः ३७ ॥

अर्थ ॥ आदिके दोय शुक्लध्यान पूर्व के जाननेवाले श्रुतकेवलीकै होय हैं ॥

परेकेवलिनः ३८ ॥

अर्थ ॥ तीजा चौथा ये दोय शुक्लध्यान सयोग केवली अयोग केवलीकैहोयहै ॥

पृथक्त्वैकत्ववितर्कसूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिव्युपरतक्रियानिवर्तीनि ३९ ॥

अर्थ ॥ पृथक्त्ववितर्क बिचार १ एकत्व वितर्क विचार १ सूक्ष्म क्रिया प्रति पाति १ व्युपरतक्रिया निवर्तिनि १ ये च्यार प्रकारके शुक्लध्यान हैं ॥

त्र्येकयोगकाययोगयोगानां ४० ॥

अर्थ॥ प्रथम शुक्लध्यान तीनू योगमेंहै॥द्वितीय शुक्लध्यान तीनूयोगतै एक योग मै है ॥ तृतीय शुक्लध्यान काययोग मे है ॥ चौथा शुक्लध्यान अयोग केवली के होय है ॥

एकाश्रयेसवितर्कविचारेपूर्व्वे ॥ ४१ ॥

अर्थ ॥ आदिके दोऊ शुक्ल ध्यान श्रुत केवली के आश्रय होय हैं॥ ते वितर्क केहिये श्रुत अर विचार कहिये पटलने सहित हैं ॥

अविचारंद्वितीयं ॥ ४२ ॥

अर्थ ॥ दूजा एकत्व वितर्क ध्यान है सो विचार जो पलटना ताकरिरहितहै ॥

वितर्कःश्रुतं ॥ ४३ ॥

अर्थ ॥ वितर्कनाम श्रुतिका है ॥

विचारोर्थव्यंजनयोगसंक्रान्तिः ॥ ४४ ॥

अर्थ ॥ अर्थ जो द्रव्य तथा पर्याय हैं, व्यंजन वचन हैं, योग मन वचन काय इनकी क्रिया है, पलटना ताको संक्रांति कहिये, सो प्रथम शुक्ल ध्यान में द्रव्य

ते पर्याय मै पर्याय ते द्रव्यमें पलटना होय है, तथा श्रुतका एक वचन अवलम्वन करिकै अन्य वचनको अवलम्वन करै सो व्यंजन का पलटना है ॥ मन वचन काय इनके योग मैते एक योगको छोड़ि अन्यको ग्रहण करै है सो अर्थ व्यंजन योग इनका पलटना है सो पहले शुक्ल ध्यान में है ॥ दूजा मै पलटने का कारण मोहनी कर्म नहीं तातै मणी के दीपक समान अचल है ॥

सम्यक्दृष्टिश्रावकविरतानन्तवियोजकदर्शनमोहक्षपकोपशमकोपशान्त
मोहक्षपकक्षीणमोहजिनाःक्रमशोसंख्येयगुणनिर्जराः ॥ ४५ ॥

अर्थ ॥ कोऊ भव्य पंचेन्द्री संज्ञीपर्याप्तक, प्रथमोपशम सम्यक्तकी उत्पत्ति होनेकै अर्थि, तीनू करण के परणाम के चरण समयमैं, वर्तमान विशुद्धता सहित मिथ्यादृष्टी ताकें आयुकर्मविना सप्त कर्मकी निर्जरा होय है, तातै असंयत सम्यग्दृष्टी के गुणश्रेणि निर्जरा असंख्यातगुणाहोय है ताते देशव्रतीकै, तातै सकल संयमी महाव्रतीकै, तातै अनन्तानुवन्धी कषायके विसंयोजन करनेवालै कै, तातै दर्शन मोह क्षपावनेवाले कै, तातै उपशमक तीनगुणस्थानवाले कै,

तातैं उपशांतमोह ग्यारमा गुणस्थान वाले के, तातै क्षपक श्रेणी के तीनूगुण स्थान वाले कै, तातै क्षीण मोह नाम वारमा गुणस्थानवाले कै, तातै जिनके वली कै, इति दशस्थाननी मैं जोकर्म निर्जरे है सो असंख्यातगुणा गुणश्रेणीरूप समय समय निर्जरै है, काल अंतर मुहूर्त प्रमाण समस्तस्थान मैं गुण श्रेणि निर्जरा करै हैं परन्तु ऊपर ऊपर घाटि घाटि प्रमाण रूप अंतर मुहूर्त हैं॥

पुलाकबकुशकुशीलनिर्ग्रंथस्नातकानिर्ग्रंथाः ॥ ४६ ॥

अर्थ ॥ ये पांच प्रकार के मुनी है तिनके सम्यदर्शन हैं अर वस्त्र आभूषण आयुधादिक परिग्रह रहित हैं तातै निर्ग्रंथ संज्ञा पांचौंही के हैं॥ बहुरिजेउत्तरगुण की भावना रहित हैं अर जिनके व्रतमैंहू कोऊ क्षेत्रविषै कोऊ काल विषै परिपूर्णता नहीं है तातै पुलाक ऐसी संज्ञा हैं ॥ पुलाक नाम पराल सहित शाली का है तातै मूलगुण विषैहू कोऊ क्षेत्र कालादिकमैं विराधना मलरूप पराल सहित हैं तातै पुलाक कह्या है॥ १॥ बहुरिबाह्य अभ्यन्तर परिग्रह का सर्वथा अभाव रूप मै तो उद्यमी भया तिष्ठै है व्रत जिनकै अखण्डितहैं, मूल गुण

खण्डित नाही करै हैं, अर शरीर उपकरण इनकी भूषा सुंदरता मे जिनके अनु राग हैं, जातेंसंघके नायक आचार्य होय तिनकै प्रभावनादिकमैं अनुरागहोयही तिस प्रभावनाकेनिमित्तकरि सुंदर शरीर कमण्डलु पिच्छिकास्थानादिकसुंदरता मै अनुराग करै है बहुरिसंघके मुनीमे अमुराग तथा धर्मकी प्रभावनादिककेवास्ते आद्दिमै, शरीर के संस्कारैं मै, यशमै, प्रभाव मै तत्परताहै, परमार्थतै एहू परिग्रह ही हैं, जातै रागमल सहित आचरण कर्बुरीति धारैहैं अर बकुशनाम कबूतरका है तातै इनको बकुश कहै ॥ २ ॥ बहुरि कुशील दोय प्रकार है, एक प्रति सेवना कुशील, दूजा कषाय कुशील, तहां जिनके मूलगुण उत्तरगुण तो परिपूर्ण हैं अर शरीर कमण्डलु पुस्तक शिष्य येंही परिग्रह, इनते भाव जिनके न्यारे नहीं भये, कोई प्रकार कारण विशेष ते उत्तरगुणकी विराधना करनेवाले, ऐसे मुनी प्रति सेवना कुशील है ॥ बहुरिजानै अन्य कषायका उदय तो वशकीया अर संज्वलन मात्र कषायकै आधीन है सो कषाय कुशील हैं ऐसे दोयभेदरूप कुशीलकहे॥३॥ बहुरिजिनकै समस्त मोहका उदयका तो अभाव भया अन्यकर्मका उदय जिनके

मंद होगया अर आत्मप्रदेशका तथा उपयोगका चलना मन्द मन्द भया व्यक्त अनुभव गोचर नहीं अर अंतर्मुहूर्त तैं ऊपर केवलज्ञान जिनको उपजै ते निर्ग्रंथ है ॥ ४ ॥ अर जिनके घातिया कर्मका अत्यन्त नाश भया ऐसैं सयोग केवली अयोग केवली इनको स्नातक संज्ञा है ॥ ५ ॥ स्नात वेद समाप्तौ ऐसा धातुका स्नातशब्द बनेहैं सो ज्ञानके सम्पूर्णता के अर्थ में है ॥ ऐसे ये पांचूहीमुनी चारित्र परिणामकी हानि वृद्धी ते भेदहोतेभी नैगम संग्रहादि नयकी अपेक्षाकरि निर्ग्रंथही है ॥

संयमश्रुतसेवनातीर्थलिंगलेश्योपपादस्थानविकल्पतः साध्याः ॥ ४७ ॥

अर्थ ॥ ये पुलाकादिकमुनी है ते संयमादिक अष्ट अनुयोग साध्यकहिये जानने, व्याख्यान करने ॥ अब संयम कहेहैं ॥ पुलाक बकुश प्रतिसेवना कुशील ये तीनू मुनी तो समायिक, छेदोपस्थापना ये दोय संयममेंहीवर्तैंहैं ॥ कषायकुशील है ते सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहार विशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय ये च्यारीसंयम विषे वर्त्तैंहे ॥ निर्ग्रंथ, स्नातक ये दोयमुनी यथाख्यातसंयमहीमें प्रवर्त्तैं है ॥ १ ॥ अब

श्रुतिकहेहैं॥ बहुरिपुलाक, बकुश, प्रतिसेवनाकुशील, इनतीनूके उत्कृष्ट श्रुतकाज्ञान दश पूर्व पर्यंतहोयहे, कषायकुशील अर निर्ग्रंथ के उत्कृष्ट श्रुतकाज्ञान चोदह पूर्व पर्यंत होयहे॥ अर जघन्य श्रुतज्ञान पुलाक के तो आचारांग मे आचार बस्तु हे तहां पर्यंत हे ॥ बहुरि बकुश, कुशील, निर्ग्रंथ, इनके जघन्य श्रुतज्ञान अष्ट प्रवचन मातृका पयतं हैं, आचारांगमै पंचसामिति तीनगुप्तिका व्याख्यान पर्यंत होय हैं ॥ स्नातक हैं ते केवलज्ञानी हैं तिनकै श्रुत नहीं हैं ॥ १ ॥ अब सेवना कहेहैं ॥ बहुरि प्रतिसेवना जोविराधना सो पुलाककै तो पंचमहाव्रत अर एक रात्रिभोजनत्याग इनि छहव्रतमै परके बसतै परकी जबरीतै एककोई व्रतकी विराधना होये हैं ॥ बहुरि बकुश दोयप्रकार हैं, एक उपकरणबकुश दूजा शरीरबकुश ॥ तिनमै उपकरण बकुशकै बहुत सोभादि सहित कमंडलादिक राखनेकी इच्छा याही विराधना हैं ॥ अर शरीरबकुशकै शरीरसंस्कार करना, सवारना, सोभनीक रहनेमै परिणाम सोही विराधना हैं ॥ अर प्रतिसेवना कुशीलकै मूलगुणमै विराधना नहींलगै अर उत्तरगुणमै कोइक विराधना लगै है

सो प्रतिसेवना हैं ॥ अर कषायकुशील, निर्ग्रंथ, स्नातक, इनकै विराधना नाही
हैं ॥ १ ॥ बहुरि तीर्थकहैं हैं ॥ ये पंचप्रकारकेमुनी समस्त तीर्थकरके तीर्थमे
होय हैं ॥ १ ॥ अब लिंग कहै हैं ॥ लिंग दोयप्रकार हैं ॥ एकद्रव्यलिंग एक
भावलिंग ॥ भावलिंग करिके तौ पंचप्रकारके मुनी निर्ग्रंथही है सम्यक्त्वसहि
त हैं मुनिपणागै निरादरभाव कोऊकै नाही हैं ॥ अर द्रव्यलिंगकरि तिनमै
भेद हैं, कोऊ आहार करैहै, कोऊ अनशनादितप करै हैं, कोऊ उपदेश करैहै,
कोऊ अध्ययन करैहै, कोऊ तीर्थविहार करैहै, कोऊ ध्यान करैहै, कोऊ अनेक
आसन करैहै, कोऊकै दोषलागैहै, कोऊ प्रायश्चित लेहै, कोऊ दोष नहीलगावै
है, कोऊ आचार्य हैं, कोऊ उपाध्याय हैं, कोऊ प्रवर्तक हैं, कोऊ निर्यापक हैं,
कोऊ वैयावृत्य करैहै, कोऊ ध्यानविषै श्रेणीका आरंभ करैहै, कोऊकै केवलज्ञा
न उपजै हैं ॥ इत्यादि मुख्य गौण वाह्यप्रवृत्तिकी अपेक्षा लिंगभेद है ॥ दिगं
वर हैं ते नग्नहै, वस्त्र आभरण शस्त्रादि रहित हैं, ऐसे लिंग कह्या ॥ १ ॥ अब
लेश्या कहैहैं ॥ पुलाकमुनीकै तीनू शुभही लेश्या हैं ॥ बकुश तथा प्रतिसेवना

कुशील इनकै षट्लेश्या हैं ॥ अन्यआचार्यके अभिप्रायतै तीनू शुभही लेश्या हैं॥ कषायकुशीलकै उत्कृष्ट चारलेश्या हैं, अन्यआचार्यके अभिप्रायतै तीनू शुभही लेश्या है ॥ निर्ग्रंथ और स्नातक इनकै केवल शुक्ललेश्या हैं॥ अयोगी भगवान के लेश्या नहीहैं ॥ १ ॥ अब उपपाद जो उत्पन्नहोना सो कहैहैं ॥ पुलाकका उ-त्कृष्ट उपपाद उत्कृष्ट स्थितिके धारक सहस्रारस्वर्गके देवमै उपजै हैं, अठारह सागर प्रमाण आयु पावै ॥ बकुश अर प्रतिसेवनाकुशीलकौ उत्कृष्टउपपाद आरण अच्युतस्वर्गमै बावीससागरकी आयुपावनेवालेमैं हैं ॥ कषायकुसील अर निर्ग्रंथ का उत्कृष्ट उपपाद सर्वार्थसिद्धिविषै तेतीससागर आयु प्रमाण के धारकमैं हैं ॥ अर इनि पंचप्रकारके मुनीका जघन्यउपपाद दोय सागरकी आयुके धारक सौधर्मस्वर्गविषैं हैं ॥ स्नातककैं निर्वाण मेंही उपपाद हैं ऐसैं उपपाद कह्या ॥ १ ॥ अब स्थान कहैहैं ॥ कषायके तीव्रमंदपणातै संयमकी लब्धिके स्थान असंख्यात हैं॥ तितमै सर्व जघन्य संयमलब्धिस्थान पुलाक अर कषायकुशील ये दोऊकै होतै असंख्यात स्थानताई यो युगपत लारि

जाय, पाछै पुलाककीतौ व्युच्छित्त होय अर पाछै कषायकुशील असंख्यात स्थान एकाकी जाय, पाछै कषायकुशील अर प्रतिसेवनाकुशील अर बकुश ये युगपत् लारही असंख्यातस्थान गमन करै, पाछै बकुश व्युच्छित्तनै प्राप्तहोय, तीठापाछै असंख्यात स्थान जाय प्रतिसेवनाकुशील व्युच्छित्तने प्राप्तहोय हैं, तीठापाछै असंख्यातस्थानजाय कषायकुशील व्युच्छित्तनै प्राप्तहोय है यातै ऊपर कषाय रहितस्थान हैं ते निर्ग्रंथके हीहैं सोभी असंख्यात संयमलब्धिस्थान जाय व्युच्छित्तनै प्राप्तहोय हैं, यातै ऊपर एकस्थान जाय स्नातक निर्वाणनै प्राप्तहोय हैं ऐसै ये संयमलब्धिस्थान असंख्यात हैं तोहू अविभागपरिच्छेदकी अपेक्षा अनंतका गुणाकार हैं ॥ १ ॥ ऐसैं पुलाकादिकमुनीका स्वरूप कहा सो अष्ठप्रकार करि समझने योग्य हैं ॥

इतितत्त्वार्थाधिगमेमोक्षशास्त्रेनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

॥ दशमोऽध्यायः ॥

मोहक्षयात्ज्ञानदर्शनावरणांतरायक्षयाच्चकेवलं ॥ १ ॥

अर्थ ॥ पहले मोहका क्षय क्षपकश्रेणीमें करि बहुरि अंतरमुहूर्तमें क्षीणकषयनामपाय पाछें युगपत् ज्ञानावरण, दर्शनावरण. अंतराय, इन कर्मका क्षयकरि केवलज्ञान उपजैं हैं ॥

बंधहेत्वभावनिर्जराभ्यांकृत्स्नकर्मविप्रमोक्षोमोक्षः ॥ २ ॥

अर्थ ॥ नवीन बंधके हेतु जे मिथ्यात्व अविरतादिक तिनका तौ अभाव भया अर पूर्वके बंधेहुये कर्मथे तिनकी निर्जरा ये दोऊतैं समस्तकर्मका अत्यंत अभाव होना सो मोक्ष हैं ॥

औपशमिकादिभव्यत्वानांच ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ उपशमीक आदि भाव अर पारिणामिक मे भव्यत्व, इनका अभावतें मोक्ष हैं ॥

अन्यत्रकेवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्यः ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, सिद्धत्व, ये भावविना सिद्धके अन्यभावका अभाव हैं, जीवत्वभावको सिद्धत्वभावकरि जानना, अनंतवीर्य अनंतसुखहैं ते

अनंतज्ञान दर्शनमें अंतर्भूत हैं जाते अनंतवीर्यादिककरि हीनतें अनंतज्ञानादिक नाहीहोय अर सुखमें अर ज्ञानमें भिन्नता हैं नहीं ॥

तदनंतरमूर्द्ध्वं गच्छत्यालोकांतात् ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ समस्तकर्मका अभावभये पीछे जीव उर्द्ध्वगमन करै हैं, सो लोकका अंत पर्यंत जाय हैं ॥ अब कोऊ या कहे. उर्द्ध्वगमन करनेको कारण कोन हैं, कर्मतो रह्यानही, ताते हेतुकह्याविना निश्चयकियाजाय नांहि, ताते ऊर्द्ध्वगमनके हेतु कहेहैं ॥

पूर्वप्रयोगादसंगत्वाद्बंधच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ पूर्वकेप्रयोगते, असंगपणाते, बंधकेछेदते, तथा गतिपरिणामते, ये चारि हेतुते ऊर्द्ध्वगमनका निश्चयकरना ॥ अब ये चारि हेतुका समाधान करनेको चार दृष्टांत कहे हैं ॥

आविद्धकुलालचक्रवद्व्यपगतलेपालाबुवदेरंडबीजवदग्निशिखावच्च ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ छट्टे सूत्रमे कहे जे चार हेतु तिनकाअनुक्रमते चार दृष्टांत जानना

जेसैं कुंभकार चाककूं दंडते भ्रमणकरावता रहिजाय तोहू पहलेप्रयोगते जहां पर्यंत चाकके फिरवेका संस्कार नहीं मिटै तहां ताई फिर वोहीकरे, तैसें संसार अवस्थामें जीव ऊर्द्ध मुक्ती में गमनकरने के अर्थी बहुत वार परिणाममें अभ्यास कर रह्याथा सो कर्मके छूटेपीछैंहू पुर्वले अभ्यासके संस्कारते ऊर्द्धगमन करेहे ॥१॥ बहुरि जेसे माटिका लेपकरि व्याप्ततुम्वा जलमें डूब्याहुवा भी माटिका लेप उतरि जाय तब जलमें ऊंचाआजाय तेसे कर्मकेलेपकरि संसारमें डूबा आत्माभी कर्म लेप दूर भये ऊर्द्धगमन करे हे ॥ २ ॥ बहुरि जेसें एरण्डका बीज डोडामे वंध्या हुवा तिष्ठेथा अर जब एरण्डका डोडा सूकिकरि फाटे, तदि बीज ऊंचाही उछले तेसैं कर्म बन्धनकूं टूटतेही जीव ऊर्द्धगमन करेहे ॥ ३ ॥ वहुरि जेसें पवनरहित अग्निकी ज्वालाका ऊर्द्धगमनही स्वभाव हे, पवनकरि अन्यदिसामें गमनकरेहे, तैसें कर्मरहित आत्मा का ऊर्द्धगगनही स्वभाव है ॥ ४ ॥ ऐसें ये चार हेतुके चार दृष्टान्तकरि जीवको कर्मतै छूटतेही ऊर्द्धगमन निश्चय करनां ॥ फेर कोऊ कहै मुक्त भये पीछे आत्माका ऊर्द्धगमन स्वभावही है, तो लोकके अन्तमैही कैसें ठ-

हुआ ऊंचा फिर क्यों नहीं जाय, ताका हेतु रूप सूत्र कहेहैं ॥

धर्मास्तिकायाभवात् ॥ ८ ॥

अर्थ ॥ लोक के अन्त ऊपरगत उपकारका कारण जो धर्मास्तिकायहै ताका अभाव है, ताते धर्मास्तिकायका सहाय विना जीव ऊर्द्धगमनकारि लोकाकाशके बाहर अलोकाकाशमें नहिंजायहै ॥ अलोकाकाशमें धर्मास्तिकायका सद्भावमानिये तो, लोक अलोकके विभागका अभाव का प्रसंगआवै, ये मुक्ति जीवहै तिनके गतिजात्यादिकके भेदका कारण नहीं ताते भेद व्यवहार नहीं है, समस्त मुक्ति जीव समानही है ॥ कथंचित् भेदभी है सो काहे ते है सो कहे हैं ॥

क्षेत्रकालगतिलिंगतीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्धबोधितज्ञानावगाहनातर संख्याल्पबहुत्वतःसाध्याः ॥ ९ ॥

अर्थ ॥ क्षेत्रादिक द्वादशअनुयोगतैं सिद्धको भेदरूप कहे है ॥ अब क्षेत्रकरि भेद कहे है ॥ प्रत्युत्पन्ननयकीअपेक्षा सिद्धक्षेत्रमैंही सिद्धहै तथा आपकेप्रदेशमैंही सिद्धहैं वा आकाशका प्रदेशमैंही सिद्ध है अर भूतग्राहिनयकी अपेक्षा पन्द्रह कर्म

भूमी का जनम्या जीव तहांही सिद्ध होय है अर अर कर्मभूमीमै जनम्याको कोई देवादिक अन्यक्षेत्र मैं लेयजाय तो समस्त मनुष्यकाक्षेत्र (अढ़ाईद्वीप) अर दोयसमुद्रके समस्तक्षेत्रतैं सिद्धहोयहैं ॥ १ ॥ अब काल भेद कहैहैं ॥ प्रत्युत्पन्न-नयतैं एकसमयमेही सिद्धहोयहैं ॥ भूतपूर्वनयकीअपेक्षाकरिसामान्यतां उत्सर्पिणी अवसर्पिणी दोऊकालमें सिद्धहोयहैं, विशेषकरि अवसर्पिणीका सुखमादुखमा जो तीसराकाल ताका अंतभागमैंउपज्या अर दुखमासुखमा जो चौथाकाल तिससवमै उपज्या सिद्धहोयहैं तथा चौथाकालका जन्म्या पंचमकालमैभी सिद्धहोय हैं अर पंचमकालमै उपज्या सिद्धनहींहोयहै अर देवलेगया समस्त उत्सर्पिणीअवसर्पिणीमै सिद्धहोयहैं ॥ २ ॥ अब गतिकरि भेद कहैहैं ॥ गती-अपेक्षातै सिद्धगतीमैही सिद्धहोय वा मनुष्यगतीमैही सिद्धहोय ॥ ३ ॥ अब लिंगभेद कहैहैं ॥ लिंगकरिके प्रत्युत्पन्ननयकीअपेक्षा अवेदपणातै सिद्धहोयहैं ॥ भूतग्राही नयकीअपेक्षातै तीनूवेदमै क्षपकश्रेणीचढी मोक्षपावैहै, द्रव्यवेदकरि पुरुषवेदतेही सिद्धहोयहै ॥ ४ ॥ अब तीर्थभेद कहैहैं ॥ केईतो तीर्थंकरहोय सिद्धहोय

हैं ॥ केई सामान्यकेवलीहोय सिद्धहोयहैं सोभी दोयप्रकारहैं ॥ केईतो तीर्थंक
रविद्यमानहोते सिद्धहोय, केईतो जिसकालमें तीर्थंकरनहीहोय तदि सिद्धहोय
हैं ॥ ५ ॥ ॥ अब चारित्रकरिकै भेद कहैहैं ॥ प्रत्युत्पन्ननयकीअपेक्षाते
चारित्रकाअभावतेही सिद्धहोयहैं ॥ भूतग्राही नयकीअपेक्षालगताही यथा-
ख्यातचारित्रकरि सिद्धहोयहैं ॥ अंतरकीअपेक्षा सामायिक, छेदोपस्थापना,
परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय, यथाख्यात, ये पंचप्रकारचारित्रतै सिद्धहोयहैं
तथा परिहारविशुद्धिविना चारीतेही सिद्धहोयहैं ॥ ६ ॥ अब प्रत्येक बुद्धबोधित
भेद कहैहैं ॥ प्रत्येकबुद्धतो अपनीशक्तिहीकरि स्वयमेव ज्ञानपावे अर बोधित
काहिये परकेउपदेशतै ज्ञानपावै सो बोधितबुद्धहैं ॥ केईतो प्रत्येकबुद्ध मोक्षपावै
हैं केई बोधितबुद्धि मोक्ष पावै है ॥ ७ ॥ अब ज्ञान ते भेद कहैहैं ॥ प्रत्युत्पन्ननयकी
अपेक्षाते एक केवल ज्ञानतेहीसिद्ध होय हैं ॥ भूतग्राही नयते केई मति, श्रुति,
दोय ज्ञान करि केवल ज्ञान उपजाय मोक्षपावैहैं ॥ केई तीन, केई चार ज्ञानकरि
केवल ज्ञान उपजाय मोक्ष पावैहै ॥ ८ ॥ अब अवगाहनाकरि भेद कहैहैं ॥ जघन्य